यूनानी इतिहासकारों

का

भारत-वर्णन

लेखक
बैजनाथ पुरी एम० ए०
लेक्चरार इतिहास-विभाग
लखनऊ-विश्वविद्यालय
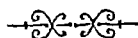
मुद्रक व प्रकाशक
श्रीविपिनविहारी कपूर, सुपरिंटेंडेंट
नवलकिशोर-प्रेस,
लखनऊ.

१९४७] [मूल्य २॥)

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक मेरी उस पुस्तक का भाषान्तर अनुवाद है जो कोई ६ वर्ष पहले छपी थी। इस समय मुझे प्रसिद्ध इतिहासज्ञ तथा अन्य विद्वानों की सम्मतियों ने इस बात के लिए प्रेरित किया कि पुस्तक का भारत की मुख्य भाषाओं—हिन्दी तथा उर्दू में अनुवाद किया जाय जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राचीन और वृहत् भारत की सभ्यता का दिग्दर्शन कर सके, जिसका विदेशियों ने उल्लेख किया है। पुस्तक विश्वविद्यालय तथा कालिजों के विद्यार्थियों की जिज्ञासातृप्ति के हेतु ही नहीं, जिससे सांस्कृतिक दृष्टिकोण विस्तृत हो, वरन् वर्तमान इतिहास, जो केवल लड़ाइयों तथा साम्राज्यों के पतन के कारणों तक ही सीमित न रहे, की सच्ची रूपरेखा दिखाने के लिए लिखी गई है। आशा है, कि प्राचीन भारत की सभ्यता का दिग्दर्शन कराने के लिए यह पुस्तक अपनाई जायगी। चित्रों के लिए मैं पुरातत्त्व-विभाग का आभारी हूँ।

—लेखक

कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ

डा० डी० आर० भंडारकर एम० ए०, पी० एच-डी०, कलकत्ता-विश्वविद्यालय के अवकाशप्राप्त कारमाइकेल प्रोफ़ेसर—

"यद्यपि यूनानी लेखकों के लेखों में सत्य और मनगढ़न्त बातों का सम्मिश्रण है, तथापि मैंने उन्हें इस पुस्तक में क्रमानुसार उचित और ठीक रूप में पाया है। सत्य को असत्य से भिन्न करते हुए श्रीयुत पुरी ने इस विषय को बहुत वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है।"

× × × ×

दीवान बहादुर डा० एस० कृष्णस्वामी आयंगर एम० ए०, पी० एच-डी०, विश्वविद्यालय के अवकाशप्राप्त प्रोफ़ेसर, मद्रास—

"... साधारण रूप से यूनानी लेखकों ने भारतवर्ष के विषय में जो कुछ कहा है उसका इस पुस्तक में क्रमानुसार और आलोचनात्मक वर्णन है। इस आलोचनात्मक वर्णन में इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि उक्त लेखों की पुष्टि किसी और प्रकार से भी होती है या नहीं। इस छोटी-सी पुस्तक को बड़ी सरलता से पढ़ा जा सकता है। जो लोग भारतवर्ष के विषय में यूनानियों के विचारों को जानने के इच्छुक हैं, वे इस पुस्तक का आदर करेंगे।"

× × × ×

डा० आर० सी० मजुमदार एम० ए०, पी० एच-डी० वाइस चांसलर ढाका-विश्वविद्यालय—

"... मेरे विचार से यह एक बहुत ही लाभदायक पुस्तक है जिसमें प्राचीन भारतवर्ष से संबंध रखनेवाली वे सब विभिन्न बातें, जो प्राचीन लेखों में मिलती हैं, एक छोटी-सी पुस्तक में एकत्रित कर दी गई हैं।"

× × × ×

प्रो० के० ए० नीलकंठ शास्त्री, इतिहास के प्रोफ़ेसर, मद्रास-विश्वविद्यालय—

"इस पुस्तक को मैंने बड़ी रुचि से पढ़ा और इसे पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।"

× × × ×

मि० एडवर्ड थामसन आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय—

"मैंने आपकी पुस्तक को पढ़ा है परन्तु इङ्गलैण्ड पहुँचकर मैं उसे ध्यानपूर्वक पढ़ूँगा। आपने एक विस्तृत क्षेत्र से विषय का सचय किया है और उसे बड़े रोचक ढ ग से रखा है।"

× × × ×

डा० अलटेकर एम० ए०, डी० लिट०, प्रोफ़ेसर, बनारस-विश्वविद्यालय—

"पुस्तक के पढ़ने से ज्ञात होता है कि लेखक ने मूललेखों का ध्यानपूर्वक और विस्तृत रूप से अध्ययन किया है। परिणामों को रोचक रूप से प्रस्तुत करने की उसमें पूर्ण क्षमता है। इस विषय पर इस नाम की कोई पुस्तक अब तक नहीं लिखी गई थी, इसलिए इस पुस्तक का प्रकाशन उपयुक्त अवसर पर हो रहा है।"

× × × ×

डा० सच्चिदानन्द सिन्हा डी० लिट० 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में लिखते हैं—

"इस छोटी-सी पुस्तक को पढ़ लेना बहुत सरल है। जो लोग भारतवर्ष के विषय में यूनानियों के मूल विचारों को जानने के इच्छुक हैं, उन्हें इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी। इस पुस्तक में यूनानी लेखकों के वर्णनों को क्रमानुसार उचित रूप से विवेक-पूर्ण आलोचना करते हुए रखा गया है।"

× × × ×

विहार और उड़ीसा के रिसर्च सोसाइटी की पत्रिका—

"श्रीयुत पुरी ने यूनानी लेखकों के वर्णनों को बहुत सरल रूप में रखा है। नवीन अन्वेषणों के आधार पर जो लेख आपने लिखे हैं, वे बहुत ही मनोरंजक और लाभदायक हैं।"

× × × ×

पाइनियर—

"श्रीयुत पुरी ने हेरोडोटस, टेसियस, मेगास्थनीज़, प्लिनी, पैट्रोक्लीज़ और स्ट्राबो के वर्णनों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है और उन्हें सच्चाई की कसौटी पर कसने का पूरा प्रयत्न भी किया है। उनकी पुस्तक का विषय इसलिए भी मनोरंजक है कि उससे प्राचीन भारत के सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है।"

× × × ×

राव साहब सी० एस० श्रीनिवासचारी मद्रास की भारतीय इतिहास की पत्रिका में लिखते हैं—

"इस विषय पर यह एक छोटी-सी पुस्तक है जिसमें मुख्य-मुख्य प्राचीन लेखकों के लेखों की मौखिक बातें और भारत के संबंध में वे भौगोलिक बातें वर्णन की गई हैं जो उनके लेखों में पाई जाती हैं। इन लेखों से यह परिणाम निकलता है कि यूनानी लेखक उस प्राकृतिक एकता से परिचित थे जो भारतवर्ष को प्राप्त है। ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दि से लेकर ईसा की मृत्यु के बाद दूसरी शताब्दि तक के समय के बारे में जो वर्णन इन लेखकों ने किया है उससे हमें ज्ञात होता है कि राजनैतिक क्षेत्र में भी विभिन्न समयों और विभिन्न प्रान्तों में शासन-प्रणाली भिन्न-भिन्न थी। इसके पश्चात् उन्होंने सामाजिक विभिन्नता, रहन-सहन और लोगों के पहनावे का वर्णन किया है। इस पुस्तक में वर्णित बातों से ज्ञात होता है कि समाज पूर्णरूप से उन्नत हो चुका था और विदेशों से भी उसका सबंध स्थिर हो चुका था। उद्योग-धन्धों में भी किसी सीमा तक उन्नति के लक्षण पूर्ण रूप से विद्यमान थे।

इसके अतिरिक्त धार्मिक और बौद्धिक विकास भी हो चुका था जिसमें वह वेदांत और संन्यास का ज्ञान भी सम्मिलित है जो उस समय विभिन्न वर्गों में फैला हुआ था। हिन्दुओं के धार्मिक विचारों और वेदांत ने भी यूनानी लेखकों को बहुत प्रभावित किया। भारतीय कला-कौशल और निर्माण-कला पर यूनानी संस्कृति का जो प्रभाव पड़ा उसकी ओर भी दृष्टि डाली गई है और साथ ही साथ भारतीय जीवन को प्रदर्शित करने के विचार से भारतीय निर्माण-कला की भव्यता पर भी ज़ोर दिया गया है। साधारण अध्ययन करनेवालों के लिए यह पुस्तक लाभदायक है।"

× × × ×

'हिन्दू' मद्रास—

" छोटी-सी यह पुस्तक, जिसमें सत्य और मनगढन्त बातों का सम्मिश्रण है, बहुत उपयोगी है। इसमें लेखक ने सत्य को असत्य से निकालने और जहाँ कहीं सम्भव था विवादग्रस्त प्रश्नों को भारतीय साहित्य और इतिहास द्वारा सुलझाने का भी प्रयत्न किया है।"

× × × ×

'फैडरेटेड इंडिया', मद्रास—

' यूनानी लेखकों के प्राचीन भारत का चित्र खींचकर श्रीयुत पुरी ने देश की अपूर्व सेवा की है। इन लेखकों ने भारत का जो चित्र खींचा है वह बहुत ही मनोरंजक है। इस पुस्तक को पढ़ते समय हमें ऐसा आभास होता है कि हम उन लेखकों के वर्णन उन्हीं की भाषा में पढ़ रहे हैं और भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल का चित्र हमारी दृष्टि के सामने आ गया है।"

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

परिचय

प्राचीन यूनानियों को बहुत काल तक भारत के विषय में बिलकुल अल्प ज्ञान रहा। इस सम्बन्ध में उनके विचार अनिश्चित, अस्थिर तथा अस्पष्ट थे। यद्यपि व्यापार और वाणिज्य के कारण भारत और यूनान का नाता जुड़ चुका था[1] फिर भी यूनानी भारत को पूर्वीय एथीओपिया[2] समझते थे जिसके निवासी सूर्य की गर्मी के कारण अत्यन्त काले थे। यूनानी भारत की बनी हुई चीज़ों[3] का, जिनमें राँगा और हाथीदाँत प्रमुख थीं, उपयोग करते थे किन्तु उनके उद्गमस्थान का उन्हें पता न था। यूनानी साहित्य[4] में भी कहीं-कहीं पर विचित्र भाँति के पुरुप और जीवों का उल्लेख है, जिनमें से कुछ का सम्बन्ध भारत से, और कुछ का उसके निकटवर्ती

१—डाक्टर सायस के मतानुसार भारत और यूनान में सामुद्रिक व्यापार ईसा से कोई ३००० वर्ष पहले से चला आता था। (देखिए—हिवर्ट लेक्चर १८८७)। केनडी साहब का कहना था कि इस सम्बन्ध में ईसा से सातवीं सदी पूर्व का न तो साहित्यिक और न पुरातात्त्विक प्रमाण मिलता है, किन्तु छठी शताब्दी के लिए बहुत प्रमाण है। (देखिए—जे० आर० ए० एस० १८९८)

२—होमर-ओडिसी १, २३-२४। ३—राधाकुमुद मुकर्जी—इंडियन शिपिंग पृ० ९२। ४—कैम्ब्रिज इतिहास जिल्द १, पृष्ठ ३९४

देशों से दिखाया गया, किन्तु ये सब विचार केवल कल्पित थे।

इस अल्प ज्ञान की वृद्धि बहुत काल तक न हो सकी, यद्यपि सिसास्ट्रीज़[१] की अध्यक्षता में मिश्रियों, सेर्मिमी के असीरियों और फारस के सम्राट् कुरुष[२] (साइरस) तथा दारयवुष[३] (डेरियस) के नेतृत्व में ईरानियों के लगातार आक्रमणों से भारत की सभ्यता का द्वार इन विदेशियों के लिए खुल चुका था। इसका कारण

१—डायडोरस ने इसे साइसोसिस कहा है। कुछ विद्वानों ने इसकी समानता ओसिरटासन प्रथम, और कुछ ने रैमसेस से की है जिसका राज्य-काल विलकिन्स के अनुसार ई० पू० १३११-१२४५ तक रहा। राजसिंहासन पर बैठते ही उसने एक बड़ी सेना एकत्रित की, जिसमें ६ लाख पैदल, २४००० घोड़े, २७००० रथ और १००० जहाज़ों का बड़ा बेड़ा था, और ससार को जीतने के लिए प्रस्थान किया। (देखिए—अमरीकन साइक्लोपीडिया जिल्द १४, पृ० ५२१)

२—कुरुष (साइरस) और असीरिया की प्रसिद्ध रानी सेर्मिमी का उल्लेख निआरकस के वृत्तान्त में मिलता है। अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के आक्रमण का वर्णन करते हुए इसने लिखा है कि गेडरोशिया (बलूचिस्तान) की ओर प्रस्थान करते समय वहाँ के निवासियों ने बताया कि अपनी सेना के केवल २० सैनिकों सहित सेर्मिमी और सात सैनिकों सहित कुरुष यहाँ से भाग सका था। (देखिए—केम्ब्रिज इतिहास, जिल्द १, पृ० ३३१)

३—स्काइलाक्स की दी हुई सूचना का उपयोग करते हुए दारयवुष ने सिन्धु की घाटी पर अधिकार कर लिया, और उसका बेड़ा भारतीय सागर में घूमने लगा। पराजित देशों को एक में मिलाकर एक क्षत्रपी बनाई गई जो उसके साम्राज्य में सबसे धनी और घनी बसी हुई थी। (देखिए—स्मिथ प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ४०)

इन आक्रमणकारियों की मनोवृत्ति थी। उनका ध्येय भारत के पश्चिमी भाग को जीतना था, न कि भारतीय प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का दिग्दर्शन करना। इसके अतिरिक्त भारत और यूनान के बीच की दूरी भी इस अल्प ज्ञान का कारण थी, जिससे इन दोनों देशों में पूर्णतया समागम असम्भव सा था। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में जब कि सेन्टिक और निकटवर्त्ती एशिया के देश ईरानी साम्राज्य का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, और एक कोने में यूनान तथा दूसरे में पश्चिमी भारत राजनैतिक सूत्र में बँध गये थे. जब भारत और यूनान का धन एक ही कोष में जाता था और भारतीय सैनिक यूनानियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर ईरानी सम्राट् की ओर से लड़ते थे. इन दोनों देशों का पूर्णतया सांस्कृतिक समागम आरम्भ हुआ और भारतीय सभ्यता की ओर उनकी आँखें खुलीं।

प्रथम यूनानी इतिहासकार, जिसने भारत का कुछ उल्लेख किया है, करयन्दा का स्काइलाक्स था। दारयवुष ने उसे सिन्ध-प्रदेश की खोज लगाने के लिये नियुक्त किया था। कश्यपपुर[1] (कसपैपीरस) से यात्रा समुद्र-मार्ग द्वारा आरम्भ हुई। इसके वृत्तान्त में केवल यात्रा का ही वर्णन है। भारत के विषय में कुछ भौगोलिक स्थानों का उल्लेख है, जो सिन्धु नदी के मुहाने पर स्थित थे। इस वृत्तान्त से न तो केवल ईरानियों को ही, वरन्

१—यह उत्तरी सिन्धु की घाटी के निकटवर्त्ती स्थान तथा काबुल नदी के संगम के समीप, वर्त्तमान पेशावर ज़िले में था। हेकाटियस ने इसे गान्धारियों का नगर कहा है। (देखिए—डाक्टर शाफ, पेरीप्लस पृ० ४२)

कुछ यूनानी इतिहासकारों को भी सहायता मिली, जिन्होंने इसे देखने का कष्ट किया।

मिलेटस के हेकाटियस[1] (ई० पू० ५४६-४६६), जिसने अपनी 'भूगोल' ई० पू० ५०० के लगभग प्रकाशित की, ने भी केवल उत्तरी पश्चिमी भारत का अनिश्चित रूप से वर्णन किया है। इससे यह प्रतात होता है कि उसका आधार स्काइलाक्स का वृत्तान्त था। इसके अतिरिक्त उसका सम्बन्ध कुछ ईरानियों से भी था, जो उसे यात्रा में मिले, और जिनके वृत्तान्त के आधार पर उसने अपनी भूगोल लिखी। उसका आभास केवल ईरानी साम्राज्य तक सीमित था। उसने कुछ स्थानों का ठीक-ठीक उल्लेख किया है, जैसे—कश्यपपुर (कसपैपीरस) का जिससे उसका संकेत सिन्धु नदी और गांधार-प्रदेश के निवासियों से था। उसने कुछ भारतीय जातियों, जैसे—'ओपिआई' तथा 'कलटिआई' का भी उल्लेख किया है, किन्तु इनकी सिन्धु घाटी की किसी जाति से समानता नहीं की जा सकती।

प्रथम यूनानी इतिहासकार, जिसने भारत का वास्तविक वर्णन किया है, हेलाकर्नसास-निवासी हेरोडोटस था जिसका जन्म-काल ई० पू० ४८४ और मृत्यु ई० पू० ४३१ है। इसकी महत्ता 'हिस्टारिका' नामक वृहत् पुस्तक के कारण है जिसमें सार्वभौमिक इतिहास के लक्षण

१—इस यूनानी इतिहासकार और भूगोल-शास्त्रज्ञ ने ईरानी साम्राज्य के बहुत से प्रदेशों की यात्रा की थी, और इसे दारयवुष ने पराजित देशों से धन वसूल करने के लिए भेजा था। इसकी 'भूगोल' और एक ऐतिहासिक पुस्तक के कुछ अंश सन् १८३१ में बर्लिन में छपे थे।

पाये जाते हैं। इस ऐतिहासिक वृत्तान्त में संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के इतिहास का उल्लेख है। भारत के विषय में यद्यपि वृत्तान्त इतना विस्तारपूर्वक नहीं है,[1] जितना और देशों का है, फिर भी इससे इस परिश्रमी विद्वान् की योग्यता और अन्वेषण का पता चलता है। इसने अपना वृत्तान्त मौखिक प्रमाणों के आधार पर लिखा है। समाचार के उद्‌गम को सत्यता की कसौटा पर न कसकर इसने उनको पूर्णतया सत्य मान लिया। इससे 'इतिहास के पिता' की उपाधि कुछ आश्चर्य अवश्य रखती है, और यह बात कम नहीं कि केवल मौखिक प्रमाणों पर विश्वास रखते हुए उस काल में इसने ऐसा महान् ग्रन्थ लिखा जिससे इसकी कीर्ति कोने-कोने में फैल गई। साहित्यिक युग में इस ग्रन्थ ने एक नवीन आदर्श स्थापित कर दिया, जिसका उदाहरण पहले न था। यह पुस्तक अब भी उसी रूप में है, और इससे ग्रन्थकार की महान् विद्वत्ता टपकती है।

हेरोडोटस के पश्चात् दूसरा यूनानी इतिहासज्ञ ईरानी सम्राट् आर्टाज़ेरक्सीज़ का चिकित्सक टेसियस था। यह ज़ेनोफोन का समकालीन था, और इसी ने सबसे पहले भारत का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से किया है, जो उस समय तक यूनानियों के लिये अंधकार देश था। ईरानी सम्राट् के चिकित्सक होने के कारण ई० पू० ४१६-३९८ तक उसे राजसभा में केवल उन ईरानी राजकर्मचारी से ही नहीं जो भारत हो आये थे, वरन् भारत से आये हुए महानुभावों से संसर्ग का भी अवसर मिला। इस बात

1—पुस्तक ३-९७-१०६; ४. ४४, ७-६५, ८६।

का प्रमाण उसकी पुस्तक से मिलता है[1] जिसमें उसने दो भारतीय नारियों तथा पाँच अन्य भारत-निवासियों से अपनी भेंट का वृत्तान्त लिखा है। यह व्यक्ति श्वेतवर्ण के थे और ईरानी सभा में या तो वणिक् के रूप में अथवा उत्तरी-पश्चिमी भारत के राज्याधिकारियों की ओर से भेंट लेकर आये थे। भारत का यह भाग उस समय ईरानी सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर चुका था[2]। बढ़ा-चढ़ाकर कल्पित कथाओं के कारण यद्यपि उस पर मिथ्या भाषण का दोष लगाया जाता है तथापि वास्तव में प्राचीन भारत के विषय में ज्ञान-वृद्धि के साथ ही साथ हम इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि वे टेसियस की मनगढ़न्त गाथाएँ न थीं, वरन् तत्कालीन दृढ़ विचार थे जिनको वह हटा न सका। इस आधार पर मिथ्या भाषण के दोष से वह मुक्त हो गया, परन्तु यह न समझना चाहिए कि उसका वृत्तान्त पूर्णतया सत्य है। बहुत से स्थानों पर उसके वृत्तान्त में असत्यता तथा सत्य की भ्रष्टता टपक रही है क्योंकि उसने अपनी पुस्तक में तत्कालीन दृढ़ विचारों को रखने का निश्चय कर लिया था[3]।

१—टेसियस ने 'ईरान का इतिहास' २३ भागों में लिखा था, जिस समय वह ईरान के सम्राट् का चिकित्सक था। उसकी दो पुस्तकें 'परसिका' और 'इन्डिका' खो गईं, किन्तु उनके कुछ अंशों का संग्रह नवीं शताब्दी में सम्राट् मिचेल तृतीय के समय में फोयटस ने किया था। इस संग्रह का आंग्ल-भाषा में मैक्रान्डिल साहब ने सन् १८८२ में अनुवाद किया और यह इन्डियन ऐंटिक्वेरी में छपा। २—बिब्लीओथियाँ अंश ९२। ३—हेरोडोटस—४, ४४। ये काल्पनिक कथाएँ कदाचित् अनार्यों से सम्बन्ध रखती हों, जिनका वृत्तान्त ऋग्वेद में है (७-२१-५२; १०-९९-३)।

अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का आक्रमण एक ध्येय का साधन प्रमाणित हुआ। यह ध्येय भारत के विषय में ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना था। यद्यपि हेरोडोटस और टेसियस ने भारत का वर्णन अपनी पुस्तकों में किया था तथापि उनके वृत्तान्त इतने बढ़-चढ़कर थे कि उनमें सत्य और असत्य का भेद निकालना कठिन था। भारत के विषय में ज्ञान का वृद्धि टेसियस के वृत्तान्त से किंचित्-मात्र भी अधिक न हो सकती, यदि अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का आक्रमण न हुआ होता। इसका पता टेसियस और मेगा-स्थनीज़ की पुस्तकों से चलता है, जिनमें महान् अन्तर है। एक ओर कल्पित कथाएँ हैं, और दूसरी ओर सत्य तथा नेत्रों देखा पूरा वृत्तान्त। इससे यह प्रतीत होता है कि अलिकसुन्दर के आक्रमण के कारण ही भारत और यूनान में सम्पूर्ण रूपसे समागम हुआ, और पूर्णतया भारतीय संस्कृति और सभ्यता को वे स्वयं अपने नेत्रों से देखकर परख सके।

अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का आक्रमण एक गुप्त रहस्य रहता, यदि उसका विवरण उन इतिहासकारों ने न किया होता जो उसके साथ में थे। खेदवश इनके लिखे हुए वृत्तान्त खो चुके हैं फिर भी पाश्चात्य इतिहासकारों की पुस्तकों में, जिनमें स्ट्राबो, प्लिनी और आरियन प्रमुख हैं, उनके कुछ अंश संगृहीत हैं। अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों में कसन्द्रिया का अरिस्टोबोलस, क्रीट का निअरकस, और ऐजिना का आनेसिक्राइटस प्रमुख थे।

उनमें कुछ विशेषताएँ थीं जैसे—चिपटी नाक (अनास्), विचित्र बोली (मृध्रवाक्), वैदिक देवताओं का विरोध (अदेयु), वैदिक रीतियों को न मानना (अकर्मन्) इत्यादि। टेसियस ने भी बौनों को चिपटी नाकवाला लिखा है। (देखिए—अंश ११)

अरिस्टोवोलस-लिखित 'युद्ध का इतिहास', आरियन का 'अनाकासिस' और प्लूटार्क की लिखी 'अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का जीवन' नाम की पुस्तकों के लिये मुख्य आधार था। निअरकस अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के साथ समुद्रीय सेनानायक था, और उसकी पुस्तक के अंश स्ट्राबो तथा आरियन की पुस्तकों में सुरक्षित हैं। आनेसिक्राइटस बेड़े का वाहक था। उसकी लिखी अलिकसुन्दर (सिकन्दर) की जीवनी मे कहीं-कहीं पर यथार्थता और मिथ्या का मिश्रण पाया जाता है, फिर भी उसकी अपूर्वता और मौखिकता से पाश्चात्य यूनानी इतिहासकारों को बहुत कुछ सहायता मिली।

इन विद्वानों ने अपना विवरण निष्कपट भाव और सच्चाई से किया है। अपने पूर्व इतिहासकारों से विपरीत इन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यता से आकर्षित हो उसका ठीक-ठीक और सच्चा वर्णन किया है। इससे इनका प्रयोजन अपने देश-निवासियों के सामने भारतीय सभ्यता और संसार में उसके स्थान को दिखाना था। इस ध्येय की पूर्ति के लिए भारत ने भी अपनी संस्कृति और सभ्यता के द्वार उनके लिए खोल दिये, और जिसकी खोज थी उसे उन्होंने पाया। यद्यपि बहुत काल तक वे भारत में न रह सके, फिर भी उस अल्प समय में उन्होंने भारतीय सभ्यतारूपी रस का पान किया। हो सकता है कि उनके आचार-विचार बहुत बढ़े-चढ़े हों, किन्तु उनकी पुस्तकों के लोप हो जाने के कारण हमको उन पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा लिखित पुस्तकों के आधार पर ही उनके थोड़े-बहुत वृत्तान्त का पता चलता है तथा उनके ग्रन्थों की महत्ता का पता लगाना कठिन हो गया है।

मेगास्थनीज़ और डायमेकस नामक दो प्रसिद्ध इतिहास-

कार मौर्यसम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र में सीरियन साम्राज्य की ओर से राजदूत थे। मेगास्थनीज़ चन्द्रगुप्त के समय में (३२१-२९८ ई० पू०) पर डायमेकस उसके पुत्र बिन्दुसार के राज्य-काल में भारत आया था[1]। वे प्रथम यूनानी इतिहासकार थे, जिन्हें भारत के अन्तस्थ अथवा मध्यभाग में जाने और ठहरने का अवसर प्राप्त हुआ। वे कुछ काल तक राजदूत होकर मौर्य-सभा में रहे। इतने समय में इन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को सीखा तथा समझा। इसी कारण उन्होंने बहुत से नवीन विचारों, जैसे-भारतवर्ष और उसकी सीमा, उसका आकृति, राज्य-कार्य, समाज, आर्थिक स्थिति तथा धार्मिक सम्प्रदाय इत्यादि, से संसार को भारत की ओर आकर्षित किया। मेगास्थनीज़ की पुस्तक 'इन्डिका', जिसमें उसने भारत का वर्णन किया था, खो गई परन्तु उसके बहुत से अंश यूनानी इतिहासकारों की, जिनमें स्ट्राबो और आरियन प्रमुख हैं, पुस्तकों में पाये जाते हैं। सबसे पहले डाक्टर श्वानबेक ने सन् १८४६ में इनका संग्रह किया, और मेकान्डल साहब ने सन् १८९१ में इन्हें अनुवादित करके आंग्ल-भाषा में प्रकाशित किया। डायमेकस की पुस्तक के विषय में कुछ पता नहीं, हाँ, केवल इतना ज्ञान अवश्य है कि उसने भारतवर्ष की लम्बाई और चाड़ाई बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखी।[2] स्ट्राबो ने उसे सबसे अधिक मिथ्यावादी कहा है।[3]

मेगास्थनीज़ के वृत्तान्त को भी पाश्चात्य इतिहासकारों ने हीन दृष्टि से देखा है। श्वानबेक का कहना है,[4] कि प्राचीन लेखक मेगास्थनीज़ को वही स्थान देते हैं, क्योंकि

१—आरियन ५-६-२। २—स्ट्राबो १५. १. १२। ३—यही १५. १. १०। ४—पृ० ५९।

उसके वृत्तान्तों में मिथ्या की मात्रा अधिक है, और इसलिए वे अविश्वसनीय हैं। इसका प्रमाण स्ट्राबो की पुस्तक से मिलता है। जिसमें लिखा है–[1]"मिथ्यावादी यूनानी इतिहासकारों में डायमेकस का स्थान प्रथम है, और मेगास्थनीज़ का द्वितीय। हाँ, अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों में, आनेसिक्राइटस और निअरकस ने कहीं-कहीं पर सत्य लिखा है।' अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का इतिहास लिखने पर इस बात का पता चला। डायमेकस और मेगास्थनीज़ अविश्वसनीय हैं, और उन्होंने भाँति-भाँति के पुरुषों के विषय में गाथाएँ कल्पित कीं, जैसे आदमियों के कान इतने बड़े थे कि वे उनमें सो सकते थे। उनके नाक न थी, केवल एक आँख थी तथा मकड़ी की ऐसी टाँगें और झुकी हुई उँगलियाँ थीं।[2] प्लिनी ने भी मेगास्थनीज़ के ऊपर मिथ्यात्व और अविश्वास का दोष लगाया है। उसका कहना है[3]–"भारतवर्ष के विषय में ज्ञान का द्वार उन यूनानी इतिहासकारों द्वारा खुला, जो भारत-सम्राट् की राजसभा में रहते थे, जैसे मेगास्थनीज़ और डायमेकस, जिन्होंने देश की जातियों इत्यादि का वर्णन किया है, पर उनके वृत्तान्त परस्पर विरोधी तथा अविश्वसनीय हैं, और इस कारण उनका अध्ययन करना व्यर्थ है।"

आश्चर्य की बात यह है कि यद्यपि मेगास्थनीज़ के ऊपर पाश्चात्य यूनानी इतिहासकारों ने मिथ्या भाषण का दोष लगाया, फिर भी उसकी 'इंडिका' के बहुत से अंशों से अपनी पुस्तकें भरीं। यह कहना सच नहीं कि 'इन्डिका' में केवल काल्पनिक कथाएँ भरी थीं। उसका दोष उन काल्पनिक

१–यही पृष्ठ ७०। २–अंश २६—स्ट्राबो १५. १. ५७
३–प्राकृतिक इतिहास ६. २१. ३।

जातियों और हेराक्लिज़ तथा डाइओनिसस के आक्रमण का वर्णन करना है[1] जिसका वह उत्तरदायी नहीं, क्योंकि यह सब वह उन ब्राह्मणों के मुख से सुन चुका था, जिनसे उसका संसर्ग मौर्य-सभा में हुआ था। इन काल्पनिक कथाओं के भारतीय उद्गम के विषय में श्वानवेक ने लिखा है[2] कि 'मेगास्थनीज़ की सत्यता पर सन्देह करना अनुपयुक्त होगा, क्योंकि उसने वही वर्णन किया, जो उसने ब्राह्मणों के मुख से सुन रक्खा था, तथा जो उसने प्रत्यक्ष नेत्रों से देखा। अतएव किसी बात की सत्यता की जाँच के लिए यह खोज लगाना आवश्यक होगा कि कहाँ तक उसके सूचना देनेवाले विश्वसनीय थे। यहाँ पर सन्देह का कोई कारण नहीं, क्योंकि जिन विषयों पर उसका स्वयं ज्ञान न था तथा जिनको वह अपने नेत्रों से न देख सका, उनका वर्णन करने के लिए उसे उन ब्राह्मणों से सहायता लेनी पड़ी, जो राज्यकार्य में प्रवीण थे, और जिनको प्रमाणों के लिए उसने निर्दिष्ट किया।' इसलिए यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि इन विचित्र जातियों और देवताओं का उल्लेख यूनानी वेष में किया गया, यद्यपि वास्तविक रूप में उनके मूल भारतवर्ष से सम्बन्ध रखते थे।

मेगास्थनीज़ ने भिन्न-भिन्न भारतीय विचारों पर प्रकाश डाला है, परन्तु भाषा और धार्मिक विषयों का उसने पूर्णतया वर्णन नहीं किया है। इसमें उसका दोष नहीं है। उत्तरकालीन इतिहासकारों ने उसकी पुस्तक के केवल कुछ ही अंश सुरक्षित रक्खे, इसलिए संभव है कि उन्होंने इन विषयों पर लिखे वृत्तान्तों को छोड़ दिया हो। उसकी पुस्तक

१—स्ट्रावो १५. १. ६-७। २—पृष्ठ ७४।

उसके वृत्तान्तों में मिथ्या की मात्रा अधिक है, और इसलिए वे अविश्वसनीय हैं। इसका प्रमाण स्ट्रावो की पुस्तक से मिलता है। जिसमें लिखा है–[1]"मिथ्यावादी यूनानी इतिहासकारों में डायमेकस का स्थान प्रथम है, और मेगास्थनीज़ का द्वितीय। हाँ, अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों में, आनेसिक्राइटस और निअरकस ने कहीं-कहीं पर सत्य लिखा है।' अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का इतिहास लिखने पर इस बात का पता चला। डायमेकस और मेगास्थनीज़ अविश्वसनीय हैं, और उन्होंने भाँति-भाँति के पुरुषों के विषय में गाथाएँ कल्पित कीं, जैसे आदमियों के कान इतने बड़े थे कि वे उनमें सो सकते थे। उनके नाक न थी, केवल एक आँख थी तथा मकड़ी की ऐसी टाँगें और झुकी हुई उँगलियाँ थीं।[2] प्लिनी ने भी मेगास्थनीज़ के ऊपर मिथ्यात्व और अविश्वास का दोष लगाया है। उसका कहना है[3]–"भारतवर्ष के विषय में ज्ञान का द्वार उन यूनानी इतिहासकारों द्वारा खुला, जो भारत-सम्राट् की राजसभा में रहते थे, जैसे मेगास्थनीज़ और डायमेकस, जिन्होंने देश की जातियों इत्यादि का वर्णन किया है, पर उनके वृत्तान्त परस्पर विरोधी तथा अविश्वसनीय हैं, और इस कारण उनका अध्ययन करना व्यर्थ है।"

आश्चर्य की बात यह है कि यद्यपि मेगास्थनीज़ के ऊपर पाश्चात्य यूनानी इतिहासकारों ने मिथ्या भाषण का दोष लगाया, फिर भी उसकी 'इंडिका' के बहुत से अंशों से अपनी पुस्तकें भरीं। यह कहना सच नहीं कि 'इन्डिका' में केवल काल्पनिक कथाएँ भरी थीं। उसका दोष उन काल्पनिक

१–यही पृष्ट ७० । २–अंश २६—स्ट्रावो १५, १, ५७
३–प्राकृतिक इतिहास ६, २१, ३ ।

ई० पू० १४४ में लिखित पुस्तक में भारतवर्ष तथा उसका सीरियन साम्राज्य से सम्बन्ध का बहुत-सा वृत्तान्त है। इसकी पुस्तक लुप्त हो गई, किन्तु केवल एक नोट रह गया, जिसका अनुवाद मैक्रान्डिल साहब ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया।[1] यह नोट सीरियन सम्राट् अंतिआकस महान् और बैक्ट्रियन सम्राट् यूथीडेमस के पुत्र डिमेट्रियस की सन्धि से सम्बन्ध रखता है, जिसने दोनों देशों के बीच युद्ध का अन्त कर दिया। जैसा कि नोट में लिखा है कि सन्धि के पश्चात् अंतिआकस भारतीय सम्राट् सुभगसेन से मिला। इस प्रकार इस नोट से ई० पू० तृतीय शताब्दी की राजनैतिक स्थिति का पता चलता है। सम्राट् अशोक ने भी अपने धर्म-लेखों में इसकी चर्चा की है।[2]

पोलिबियस के पश्चात् ईफेसस का 'आर्टीमिडोरस'-नामक यूनानी यात्री और भूगोल-शास्त्रज्ञ का कई स्थानों पर स्ट्रावो ने उल्लेख किया है। ई० पू० १०० में यह जीवित था, और कहा जाता है कि इसका सम्बन्ध 'पेरीप्लस पूर्वी तथा पच्छिमी सागर' नामक ग्रन्थ से था। इस पुस्तक का अनुवाद डाक्टर शाफ ने अमेरिकन ओरियन्टल सभा की पत्रिका में प्रकाशित किया।[3] इसमें भारत के विषय में थोड़ा-सा वृत्तान्त है, जो स्ट्रावो की पुस्तक में मिलता है।

ईसा पूर्व के किसी और यूनानी इतिहासकार ने भारतवर्ष का वर्णन नहीं किया है। इसका कारण मेगास्थनीज़ के पश्चात् भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन होना था, जिसके फल-स्वरूप कुछ समय के लिए भारत का द्वार

१—यूनानी साहित्य में भारत-वर्णन पृष्ठ xvii। २—देखिए—तीसरा और तेरहवाँ शिलालेख। ३—कैम्ब्रिज भारतीय इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४३१।

'इंडिका' लुप्त हो चुकी है, फिर भी उन सुरक्षित अंशों से पता चलता है कि उसके लिखे विवरणों ने किस प्रकार पाश्चात्य इतिहासकारों के समय में यथार्थता प्राप्त की। जिन विद्वानों ने उस पर दोष लगाना चाहा, उन्होंने उसके वृत्तान्तों से अपनी पुस्तकें भरीं। श्वानवेक ने ठीक लिखा है[1] कि 'उसकी पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ जाती है, जब हम यह विचार करते हैं कि उसने तत्कालीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता का वर्णन किया है जिसका पता भारतीय साहित्य से किसी निश्चित काल के सम्बन्ध में नहीं चल सकता।'

मेगास्थनीज़ के पश्चात् पैट्राक्लीज़ दूसरा यूनानी इतिहासकार था। वह सिल्यूकस तथा उसके पुत्र अतिश्राकस प्रथम (ई० पू० २८१-२६१) के समय में सीरियन साम्राज्य के पूर्वी भाग का राज्यकर्मचारी था। उसने पूर्वी भूगोल पर एक पुस्तक लिखी, जिसमें भारत का भी वर्णन है और उसे स्ट्राबो ने भी आदर का स्थान दिया है। कुछ भौगोलिक स्थानों के अतिरिक्त इसमें भारत का और अधिक वर्णन नहीं है, फिर भी सत्यता के लिए स्ट्राबो ने इसे सराहा है।[2] सिकन्द्रिया-पुस्तकालय के अध्यक्ष ऐराटास्थोनीज़ ने भी इसकी पुस्तक को सम्मान की दृष्टि से देखा है। ऐराटास्थोनीज़ पहला इतिहासकार था, जिसने भूगोल का विज्ञान का एक अंश मानकर उसे उच्चकोटि पर पहुँचायो, और वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर इधर-उधर से अंश संग्रह करके पुस्तक प्रकाशित की। उसकी पुस्तक में पैट्राक्लीज़ का बहुत-सा वृत्तान्त सम्मिलित है।

पोलिबियस नामक दूसरे यूनानी इतिहासकार की

१—पृष्ठ २८—२६। २—२. ६।

ई० पू० १४४ में लिखित पुस्तक में भारतवर्ष तथा उसका सीरियन साम्राज्य से सम्बन्ध का बहुत-सा वृत्तान्त है। इसकी पुस्तक लुप्त हो गई, किन्तु केवल एक नोट रह गया, जिसका अनुवाद मैक्रान्डिल साहब ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया।[1] यह नोट सीरियन सम्राट् अंतिआकस महान् और बैक्ट्रियन सम्राट् यूथीडेमस के पुत्र डिमेट्रियस की सन्धि से सम्बन्ध रखता है, जिसने दोनों देशों के बीच युद्ध का अन्त कर दिया। जैसा कि नोट में लिखा है कि सन्धि के पश्चात् अंतिआकस भारतीय सम्राट् सुभगसेन से मिला। इस प्रकार इस नोट से ई० पू० तृतीय शताब्दी की राजनैतिक स्थिति का पता चलता है। सम्राट् अशोक ने भी अपने धर्म-लेखों में इसकी चर्चा की है।[2]

पोलिवियस के पश्चात् ईफेसस का 'आर्टीमिडोरस'-नामक यूनानी यात्री और भूगोल-शास्त्रज्ञ का कई स्थानों पर स्ट्रावो ने उल्लेख किया है। ई० पू० १०० में यह जीवित था, और कहा जाता है कि इसका सम्बन्ध 'पेरीप्लस पूर्वी तथा पच्छिमी सागर' नामक ग्रन्थ से था। इस पुस्तक का अनुवाद डाक्टर शाफ ने अमेरिकन ओरियन्टल सभा की पत्रिका में प्रकाशित किया।[3] इसमें भारत के विषय में थोड़ा-सा वृत्तान्त है, जो स्ट्रावो की पुस्तक में मिलता है।

ईसा पूर्व के किसी और यूनानी इतिहासकार ने भारतवर्ष का वर्णन नहीं किया है। इसका कारण मेगास्थनीज़ के पश्चात् भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन होना था, जिसके फल-स्वरूप कुछ समय के लिए भारत का द्वार

१—यूनानी साहित्य में भारत-वर्णन पृष्ठ xvii। २—देखिए—तीसरा और तेरहवाँ शिलालेख। ३—कैम्ब्रिज भारतीय इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ४३६।

विदेशियों के लिए बन्द हो गया। पोर्थिया और बैक्ट्रिया के राजनैतिक विप्लव एक ही समय में हुए। अतिआकस द्वितीय (ई० पू० २६१-२४६) तथा उसके उत्तराधिकारी सिल्यूकस द्वितीय, और सिल्यूकस तृतीय, जो क्रमशः ई० पू० २४६-२२६ तथा ई० पू० २२६-२२३ तक राज्य करते रहे, इन गृहयुद्धों में व्यस्त थे।[1] इसके पीछे का समय उत्तरी-पच्छिमी भारत में हिन्द सीथियन और हिन्द पार्थियन लोगों के वसने में व्यतीत हुआ। इसका पूरा वृत्तान्त कैम्ब्रिज भारतीय इतिहास में मिलेगा।[2] यहाँ पर इतना कहना अनुपयुक्त न होगा कई० पू० का मेगास्थनीज़ प्रथम इतिहासकार था, जिसने भारतवर्ष का पूर्णरूप से वर्णन किया, और उसके पश्चात् के इतिहासकारों में तादृश सत्यता का अभाव है, क्योंकि वे भारत में स्वयं नहीं आये थे।

ईसा-संवत् आरम्भ का सर्वप्रथम प्रसिद्ध इतिहासकार स्ट्रावो हुआ जिसका 'भूगोल' वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखे जाने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध और विस्तृत है। अमेसिया-निवासी स्ट्रावो का जन्म-तिथि तथा मृत्यु-काल अनिश्चित हैं पर केवल इतना कहा जा सकता है कि वह ईसा-संवत् २१ में टाइवीरियस का समकालीन था। एक प्रसिद्ध यात्री होने के कारण उसने अपने नेत्रों द्वारा देखा वृत्तान्त लिखा है। इस कारण उसकी भूगोल में केवल पूर्वकालीन इतिहासकारों द्वारा लिखित पुस्तकों का समालोचना ही नहीं, वरन् महत्वपूर्ण तथा सारगर्भित नेत्रों देखा विवरण भी है जो पहलेवालों से कहीं वढ़-चढ़कर है। इस पुस्तक में भौगोलिक के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। लेखक ने स्वय

१—यही पुस्तक पृ० ४३५। २—यही पुस्तक अध्याय १८ तथा २२।

इसे एक महान् ग्रन्थ कहा है, जिसका उद्देश उन महानुभावों से सम्बन्ध रखता है, जिन्हें सार्वजनिक कार्यों से प्रेम है। इसकी पुस्तक टालमी की 'भूगोल' से भिन्न है, क्योंकि इसमें सभी विषयों पर चर्चा की गई, और टालमी ने स्थानों के अक्षांशों तथा देशान्तरों का उल्लेख कर अपनी पुस्तक को नीरस बना दिया।

प्लिनी का ग्रन्थ 'प्राकृतिक इतिहास' एक प्रकार से प्राचीन पुरुषों का विश्वकोष है। इसके कुछ वृत्तान्त महत्त्व-पूर्ण हैं, क्योंकि वे कहीं और नहीं पाये जाते हैं। पहिला प्लिनी, दूसरे प्लिनी से भिन्न था, और ईसा-संवत् की पहिली शताब्दी सन् ७७ में उसने अपना ग्रन्थ संसार के सामने रक्खा। उसकी पुस्तक में नूतनता तथा मौलिकता का अभाव है, फिर भी इससे उसके विशाल अध्ययन का पता चलता है। उसने कोई एक पुस्तक भी विना पढ़े हुए नहीं छोड़ी। उसका ग्रन्थ ३७ भागों अथवा पुस्तकों में विभाजित है। छठा भाग भारत से सम्बन्ध रखता है, जो मेगास्थनीज़ द्वारा लिखित 'इन्डिका' के आधार पर लिखा गया।

आरियन-नामक यूनानी रोमन कर्मचारी ने ईसा की दूसरी शताब्दी में भारत का एक महत्त्वपूर्ण वृत्तांत लिखा है। इसके साथ-ही-साथ उसने अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के आक्रमणों का इतिहास भी लिखा। उसके दोनों ग्रन्थ अलिक्सुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकार तथा मेगास्थनीज और डायमेकस नामक सीरियन साम्राज्य के राजदूतों द्वारा लिखे वृत्तान्तों के आधार पर प्रकाशित किये गये। आन्टोनियस पायस ने उसकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर उसे कान्सल अथवा राज-दूत के पद पर नियुक्त किया। वृद्धावस्था में उसकी मृत्यु हुई। उसकी पुस्तक 'इन्डिका' तीन भागों में विभाजित है। प्रथम में मेगास्थनीज़ द्वारा लिखित वृत्तांत के आधार

अनुपयुक्त न होगा कि यूनानी ज्ञान-वृद्धि के साथ ही साथ भारतीय भूगोल के ज्ञान की वृद्धि भी होने लगी।

देश—भौगोलिक वृत्तांत में सबसे पहले किसी देश और उसके निवासियों का वर्णन आवश्यक है। हेरोडोटस ने दो स्थानों पर भारत के विषय में लिखा[1] है कि यह सुदूर पूर्वीय देश था जिसके आगे केवल मरुस्थल ही था। उसका यह विचार दारयवुष की राज्य-सीमा के आधार पर निर्देशित था जो सिन्धु नदी तक था।[2] उसके साम्राज्य में उत्तरी-पश्चिमी भारत, पंजाब और सिन्ध-प्रदेश सम्मिलित थे जिनको मिलाकर परसीपलिटन के लेख के अनुसार २० क्षत्रपी स्थापित हुई। टेसियस[3] ने भी भारतवर्ष को एक पूर्वीय देश माना जिसके बाद केवल मरुस्थल था। हेरोडोटस से उसका ज्ञान केवल इतना ही बढ़ा था कि उसने भारत को शेष एशिया से छोटा नहीं समझा[4]। इन दोनों इतिहासकारों के वृत्तान्तों से पता चलता है कि उन्हें सिन्धु नदी के पूर्वीय स्थानों का नितान्त ज्ञान न था। ईरानी साम्राज्य इस नदी के आगे न बढ़ सका, इसलिए इन्होंने समझा कि सिन्धु नदी के पूर्व का देश उजाड़ और निर्जन होगा। इसी कारण दारयवुष ने इसे जीतने का उद्योग नहीं किया। अलिकसुन्दर के इतिहासकारों ने केवल पंजाब और सिन्ध का भ्रमण किया किन्तु उन्होंने भारतवर्ष[5] की लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान किया है। आनेसिक्राइटस का कहना[5] है कि भारत निवास योग्य स्थान का तृतीय भाग है तथा निअरकस के अनुसार

१—३. ९८; ४. ४०। २—देखिए—हिस्टारिका ४. ४४। ३—अरा १। ४—यही। ५—स्ट्राबो १५. १. १२।

पूर्वीय सागर तक जाने के लिए चार मास लगते हैं। निअरकस-लिखित वृत्तान्त सत्य प्रतीत होता है, क्योंकि उस समय इतना ही समय लगता होगा। मेगास्थनीज़ ने, जिसे भारत के अन्तस्थ भाग में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था, इस देश को चतुर्भुज कहा है। इसके दक्षिण-पूर्व में समुद्र था किन्तु उत्तर में हिमडोस[1] नामक एक पर्वत था जो भारत को सीथिया नामक स्थान से अलग करता था जहाँ के निवासी शक कहलाते थे। भारत के पश्चिम की ओर सिन्धु नदी थी जो नाइल को छोड़कर सबसे बड़ी थी[2]। भारतवर्ष की इस आकृति का पेराटास्थोनाज़ ने भी समर्थन किया है। उसके मतानुसार उत्तर में काकेसस (जिसके भाग पैरोपनिसास, ऐमडोस तथा इमसोस थे), पश्चिम में सिन्धु नदी तथा दक्षिण-पश्चिम में भारत की बड़ी-बड़ी भुजाएँ अटलांटिक महासागर तक फैली हुई हैं। उसकी आकृति रामबाइड़ अथवा विषम कोण के आयत की तरह है।[3] इनके अतिरिक्त पैट्राक्लाज़ ने भी भारतवर्ष की लम्बाई-चौड़ाई लिखी है।[4] इस इतिहासकार का अनुमान केवल कल्पनामात्र है। इन कल्पनाओं की सत्यता दिखाना व्यर्थ है, क्योंकि यह बात आश्चर्यजनक है कि जब वे नितान्त कल्पित हैं तो ठीक कैसे हो सकती हैं। इन इतिहासकारों द्वारा वर्णित लम्बाई-चौड़ाई में भिन्नता है। मेगास्थनीज़ ने इसे चतुर्भुज कहा जिसकी दो दिशाएँ बराबर हैं किन्तु पेराटास्थोनीज़ ने इसे रामबाइड़ कहा जिसकी भुजायें एक दूसरे से कोई ३००० स्टेडिया से बड़ी छोटी थीं।[5] इसी से उनके परस्पर विरोधी वृत्तान्तों का पता

१—आरियन अंश ४. २। २—अंश १. डायडोरस २. ३५. ४२। ३—स्ट्राबो १५. १. ११। ४—यही। ५—यही।

चलता है। हो सकता है कि उनकी रेखागणित से जानकारी न हो तथापि उनकी काल्पनिक लम्बाई-चौड़ाई को सत्य मानना ठीक नहीं।

स्ट्रावो और प्लिनी ने भी भारत की सीमा का उल्लेख किया है। स्ट्रावो का कहना है कि भारतीयों ने सिन्धु नदी के निकटवर्त्ती स्थानों पर अधिकार कर लिया, जो पहले ईरानी साम्राज्य में सम्मिलित थे। प्रथम अलिकसुन्दर (सिकन्दर) ने उन पर अधिकार कर लिया था, किन्तु उसके पश्चात् सिल्यूकस ने अपनी पुत्री के विवाह के उपलक्ष में उन्हें चन्द्रगुप्त मौर्य को भेंट कर दिया[1]। इससे यह न समझना चाहिए कि मेगास्थनीज़ का वृत्तान्त केवल उन्हीं प्रान्तों तक सीमित था वरन् उसने पाटलिपुत्र[2] तथा दक्षिण भारत[3] का भी उल्लेख किया है। प्लिनी का कथन है[4], कि बहुत से इतिहासकारों ने सिन्धु नदी को ही भारत की पश्चिमी सीमा नहीं माना है वरन् उसमें गेडरोशिया (गंधार), अराकोशिया (कंधार), पेरिया (हेरात), पैरोपनिसडे (काबुल) नामक चार क्षत्रपी और मिलाकर कोफस अथवा काबुल नदी को भारत का पश्चिमी सीमा बतलाया है। स्ट्रावो के मतानुसार[5] सिन्धु नदी अलिकसुन्दर के आक्रमण के समय भारत की सीमा थी।

इन इतिहासकारों के लिए यह महत्त्वपूर्ण बात है कि उन्होंने टैप्रोपेन अथवा ताम्रपर्णि नामक देश का वर्णन किया है जो भौगोलिक दृष्टिकोण से, यद्यपि, भारत से अलग था

१—स्ट्रावो १५. २. ६। २—स्ट्रावो १५. १. ३६। ३—स्ट्रावो १५. १. ४। ४—६. ७३। ५—१५. १. १८।

तथापि सांस्कृतिक रूप से उसका अंग रहा है। आनेसिक्राइटस[1] ने ताम्रपर्णि का आकार ५००० स्टेडिया वतलाया है किन्तु उसकी लम्वाई-चौड़ाई नहीं लिखी है। मेगास्थनीज़ का कहना[2] है कि यह देश भारत से एक नदी द्वारा विभाजित है। पेराटास्थोनीज़[3] ने इसकी लम्वाई-चौड़ाई वहुत वढ़ा-चढ़ाकर लिखी। प्लिनी ने तो उसको रोमन सम्राट् क्लाडियस के समय से प्रचलित व्यापार का उल्लेख किया है[4]। उसने भी इसकी लम्वाई-चौड़ाई वहुत वढ़ा-चढ़ाकर लिखी। यद्यपि ये इतिहासकार इस द्वीप के आकार की ठीक-ठीक कल्पना न कर सके फिर भी उन्हें यह भली भाँति विदित था कि प्राकृतिक दृष्टि से यह द्वीप भारत से भिन्न है और इन दोनों में सांस्कृतिक समागम का अभाव है। इस द्वीप का प्राचीन नाम पारसमुद्र था[5], किन्तु द्वीपवंश तथा महावंश में लिखा है कि जव प्रथम आर्यकुमार विजयसिंह की अध्यक्षता में उस द्वीप पर उतरे तो कुमार अपना हाथ भूमि पर टेककर वैठ गया। उसकी हथेली पीली पड़ गई और इसलिए उसने इसका नाम ताम्रपर्णि रक्खा[6]। अशोक के धर्मलेखों में भी 'तम्मपन्नी' (ताम्रपर्णि) नामक द्वीप का उल्लेख है। इसलिए यह कोई आश्चर्यजनक वात नहीं कि इन यूनानी इतिहासकारों ने उस द्वीप का उल्लेख किया जिसके विषय में वहुत पहले ज्ञान हो चुका था।

नदियाँ—सम्पूर्ण भारत की सिंचाई नदियों द्वारा होती थी[7]। प्राचीन इतिहासकारों में स्काइलाक्स, हेकेटियस

१—स्ट्रावो १५. १. १५। २—अग १८। ३—स्ट्रावो १५. १. ५। ४—६, २२ (२४)। ५—इन्डियन ऐन्टीक्वेरी १९११, पृ० ६५—६६। ६—इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली जिल्द ७, पृ० ९१। ७—स्ट्रावो १५. १. १३।

और स्ट्राबो ने केवल सिन्धु नदी का उल्लेख किया है। प्रथम दो इतिहासकारों ने लिखा है कि दारयवुष का राज्य सिन्धु नदी तक सीमित था। हेरोडोटस [1] ने केवल एक नदी का वर्णन किया है जिसकी दलदली भूमि पुरुषों द्वारा निर्वासित थी। टेसियस के अनुसार इसकी चौड़ाई कम से कम ४० स्टेडिया [2] और अधिक से अधिक १०० थी। यह कहीं पहाड़ियों से होकर और कहीं मैदानों में बहती थी [3]। उसने एक और हाइपोबेरस, सबसे अच्छी वस्तुएँ ले जानेवाली नामक नदी का भी उल्लेख किया है जो उत्तर दिशा से बहकर पूर्वीय सागर में गिरती थी, जहाँ बहुत अम्बर होता था [4]। इस नदी की समानता गंगा अथवा ब्रह्मपुत्र से की जा सकती है पर यह सम्भव है कि उसका उद्देश्य केवल गंगा से ही हो।

अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का आक्रमण केवल पंजाब तक ही पूर्व में सीमित रहा। स्वाभाविक रूप से उसके इतिहासकारों ने केवल उस प्रान्त की नदियों का ही वृत्तान्त लिखा। इन नदियों में हाइदसपेस (झेलम), असिकनी (चिनाव), हाइड्रोटिस (रावी) और हाइफेसिस (व्यास) के नाम इनकी पुस्तकों में मिलते हैं [5]। हाइद्रियस (सतलज) का इन इतिहासकारों ने उल्लेख नहीं किया, इससे इनकी सत्यता का पता चलता है। आरियन ने लिखा है कि अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का आक्रमण हाइफेसिस (व्यास) नदी पर रुक गया [6]। क्रेटिरास नामक अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के एक सेनापति ने अपनी माँ अरिस्टोपेटर के नाम

१—३. ९८। २—एक स्टेडिया कोई २०० गज़ का होता था। ३—अंश १९। ४—प्लिनी पुस्तक २७. २। ५—देखिए—मैकान्डिल "अलिकसुन्दर (सिकन्दर) का आक्रमण"। ६—आरियन ग्रंश ५।

एक पत्र लिखा था जिसमें उसने अलिकसुन्दर (सिकन्दर) की गंगा-यात्रा का वर्णन किया[१]। वह लिखता है कि उसने स्वयं उस नदी को देखा और उसमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ थीं। उसने इस नदी की लम्बाई-चौड़ाई भी लिखी जो असत्य है। जब अलिकसुन्दर (सिकन्दर) ने व्यास नदी को पार ही नहीं किया तो गंगा का वृत्तान्त देना इन इतिहासकारों के लिए अनावश्यक तथा असत्य प्रतीत होता है। हो सकता है कि उन्होंने पंजाब की किसी और नदी को गंगा समझ-कर उसका उल्लेख किया।

मेगास्थनीज़ ने केवल पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान ही की नहीं वरन् उत्तरी-पूर्वी भारत की, जिसमें वर्त्तमान संयुक्त प्रान्त और बंगाल भी सम्मिलित हैं, नदियों की एक सूची दी है। दक्षिणी भारत की कोई सूची नहीं है। उत्तरी भारत की नदियों की सूची आरियन के वृत्तान्त में मिलती है[२]। मेगा-स्थनीज़ का कथन है कि गंगा सिन्धु नदी से भी बड़ी है और इसे सहायक नदियों द्वारा बहुत जल मिलता है। उस सूची की नदियाँ और उनके वर्त्तमान नामों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

कैनस (केन), एरानोबोस (गन्डक) अथवा सोन की कोई सहायक नदी, कोसोनास (कोसी), सोनोस (सोन), सोलोमोटिस (राप्ती), कान्दोछाटेस (गन्डक), सम्बोस (गोमती), मगोन (महोबा), अगोरानिश (घाघरा), ककाउथिस (बागमती), अन्दोमेटिस (बर्दवान की दमो-दर), एरेनिसस (काशी की वर्ना अथवा असी)। आरियन का कथन है[३] कि प्लिनी ने दो और नदियों का उल्लेख किया जो प्रिनस और जोबेनेस (यमुना) थीं। रेनुपेल,

---

१—स्ट्राबो १५. १. ३५। २—आरियन अंश ४। ३—अंश ४।

विल्फोर्ड, शेचलेगेल, लासन तथा श्वानवेक नामक विद्वानों ने मेगास्थनीज़ की सूचा में लिखित नदियों की वर्त्तमान नदियों से समानता दिखाने में खोज की। इन नदियों के अतिरिक्त गंगा की कुछ और सहायक नदियों का भी उल्लेख है किन्तु उनका वर्त्तमानकालीन नदियों से मिलान दिखाना कठिन है। उनके नाम सिटोकाटिस, कोम्मिनासेस, अमरटिस, और आक्सेमागिस हैं। गगा के विषय में मेगास्थनीज़ का कथन है कि इसकी चौड़ाई कम से कम १०० स्टेडिया है और मैदानों में जब यह बढ़ जाती है तब इसका किनारा नहीं दिखाई पड़ता। इसका वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि पहाड़ से निकलकर यह पूर्व की ओर घूमती है और फिर पैलीबोथरा (पाटलिपुत्र) होती हुई समुद्र में जा मिलती है[1]।

गंगा की भाँति सिंधु की भी बहुत सी सहायक नदियाँ थीं। इनके नाम आरियन की सूची में हैं[2]। इनमें से हाइदस-पेस (झेलम), असिकना (चिनाव), हाइड्रोटिस (रावी), हाइफेसिस (व्यास) और हाइद्रियस (सतलज) मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त सूची में कुछ और नदियों के भी नाम हैं किन्तु उनका मिलान वर्त्तमान काल की किसी नदी से नहीं किया जा सकता। इनके नाम सरन्गेम्, नेन्ड्रोस, टोन्टपोस, पैरेनोस, सपरनोस तथा सोअनस हैं। हो सकता है उस समय भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि इतनी न हुई हो और ये सब कोई छोटी छोटी नदियाँ हों। पंजाब की इन नदियों के अतिरिक्त मेगास्थनीज ने अफगानिस्तान की नदियों का भी उल्लेख किया है, क्योंकि उस समय वह देश मौर्यों के अधीन

१–स्ट्राबो १५. १. १२। २–अंश ४

था। इनके नाम भी आरियन की सूची में हैं[1]। वे कोफेन (काबुल), सोअस्टेस (स्वात) और गरोया (गोमल) हैं। मेगास्थनीज़[2] ने 'सिलस' नामक एक नदी का भी उल्लेख किया है जिसको टेसियस ने एक बड़ी पुष्करिणी कहा और जिसमें कोई वस्तु तैर नहीं सकती थी वरन् गिरते ही धरातल में पहुँच जाती थी[3]। यह सम्भव है कि यह नदी 'शिला' हो जो महाभारत के अनुसार मेरु पर्वत के उत्तर में थी।[4]

उत्तरकालीन इतिहासकारों ने किसी नदी का उल्लेख नहीं किया। आरियन की भाँति कुछ ने मेगास्थनीज़ की सूची को केवल सुरक्षित रक्खा। दक्षिण भारत की किसी नदी का इन यूनानी इतिहासकारों ने कथन नहीं किया है। हाँ, पेरीप्लस में कुछ का नाम अवश्य मिलता है, जैसे बैरीगैज़ा (ब्रोच) नामक बन्दरगाह जो नर्मदा नदी पर स्थित था[5]। मेगास्थनीज़ की सूची के अतिरिक्त किसी और नदी का नाम यूनानी इतिहासकारों की पुस्तक में नहीं मिलता।

नदियों का उद्गम तथा वर्षाऋतु—वर्षा तथा बर्फ़ पिघलने के कारण नदियों में बाढ़ आ जाना स्वाभाविक है। अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों ने सबसे पहले इसका उल्लेख किया है। अरिस्टोबोलस[6] का कथन है कि पहाड़ और तराई पर वर्षाऋतु तथा शीतपात के कारण नदियों में बाढ़ आ जाती है और सब ओर जल ही जल दिखाई पड़ता है। बसन्त के पश्चात् धीरे-धीरे पानी बरसना आरम्भ होता है और पतझड़ के पहले तक खूब झड़ी

१—आरियन अश ४। २—स्ट्राबो १५. १. ३८। ३—प्लिनी पुस्तक ३१२। ४—२. १८५८। ५—देखिए—यूनानी साहित्य में भारत-वर्णन पृ० ७८। ६—स्ट्राबो १५. १. १७।

लग जाती है। शरद्ऋतु में वर्षा का उसने उल्लेख नहीं किया है। निअरकस[1] का कहना है कि चिनाव नदी में बाढ़ आ जाने के कारण यूनानियों को अपना डेरा ऊँचे स्थान पर ले जाना पड़ा। अरिस्टोबोलस[2] ने पानी को ४० क्यूबिक नापा। २० क्यूबिक पानी नदी में था और शेष मैदानों में। आनेसिक्राइटस[3] के मतानुसार नदियों की धारा बदलने के कारण कुछ स्थान समतल से ऊँचे हो जाते थे। नदी के मुहाने पर पानी की धारा से इकट्ठी की हुई मिट्टी तथा बाढ़ की रेत स्थान को दलदल बना देती थी। इस दलदल का हेरोडोटस[4] ने भी उल्लेख किया है।

मेगास्थनीज़[5] ने ग्रीष्मऋतु में वर्षा का वर्णन लिखा है। इसके कारण पहाड़ से निकली हुई नदियों में बाढ़ आ जाती थी तथा स्थान दलदली हो जाता था। समतल अथवा मैदानों में वर्षा के कारण भूमि पानी से ढक जाती थी। शरद्ऋतु के पश्चात् फिर बोआई नहीं होती थी। एराटास्थोनीज़ ने[6] लिखा है कि ग्रीष्मऋतु की वर्षा से सिंचाई होती थी। उसने दोनों ऋतुओं की वर्षा का उल्लेख किया है। उत्तरकालीन इतिहासकारों ने इस विषय पर कोई मौलिक वृत्तान्त नहीं लिखा है। उन्होंने केवल अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहास को तथा मेगास्थनीज़ के विवरणों को दोहराया है। सच तो यह है कि इन्हीं की पुस्तकों से हमें उन इतिहासकारों द्वारा लिखित वृत्तान्तों का पता चलता है जिनकी पुस्तकें लुप्त हो चुकी थीं।

जलवायु—हेरोडोटस[7] का कहना है कि दिन में बहुत

१—स्ट्राबो १५. १. १८। २—यही। ३—स्ट्राबो १५. १. २०। ४—३. ९८। ५—देखिए, आरियन इन्डिका ४. ५। ६—स्ट्राबो १५. १. २०। ७—३. १०४।

गर्म रहता था और सूर्यास्त के पश्चात् ठंडा। यह जलवायु सिन्ध-प्रदेश से सम्बन्ध रखती है जहाँ थार मरुस्थल निकट होने के कारण दिन में अत्यन्त गर्म रहता है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यह अनुमान निकलता है कि शरदृऋतु में सूर्य अयनवृत्त (ट्रापिक आफ कैन्सर) पर होता है, इसलिए रेखा पर निवासित देशों में दिन बहुत गर्म रहता है। टेसियस[1] ने भी अत्यन्त गर्मी का उल्लेख किया है। उसका वृत्तान्त, कि इस स्थान पर सूर्य दस गुना था, हास्यप्रद प्रतीत होता है पर यह समझ में आता है कि यात्रियों ने प्रचण्ड गर्मी के कारण यह समझा होगा कि सूर्य और देशों की भाँति यहाँ बहुत बड़ा होगा।

अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों ने लिखा है कि जलवायु उपज के लिए अत्यन्त लाभदायक थी। यहाँ का तापक्रम उन्हीं के देशों की तरह था किन्तु आकाश में तरी थी और इस कारण उपज अच्छी होती थी[2]। यह जलवायु पंजाब से सम्बन्ध रखती है। इन इतिहासकारों ने लिखा है[3] कि सिकन्द्रिया से कोई ५००० स्टेडिया की दूरी पर सीन नामक स्थान में प्रयोग के लिए उत्तरायण सूर्य के समय एक कुआँ खोदा गया जो दिन में प्रकाशमान हो गया। इससे पता चलता है कि दिन में वहाँ सूर्य ठीक सिर पर रहता होगा। ठीक यही अनुमान सिन्ध में भी हुआ, क्योंकि दोनों स्थान क्रमशः एक ही अक्षांश पर स्थित रहे होंगे और दोनों स्थानों में मध्याह्न-काल के समय सूर्य सिर पर रहता होगा।

मेगास्थनीज़ ने भी यह भौगोलिक घटना देखी। उसका कथन है[4] कि मोनेडेस और स्नारो जातियों के यहाँ वारी-

१—अंश ५। २—स्ट्राबो १५. १. २२। ३—प्लिनी पृ० २. ७३-७५। ४—यही पृ० ६. २२ (६)।

वारी शरद्‌ऋतु में उत्तर की ओर और ग्रीष्म में दक्षिण की ओर सूर्य की छाया दिखाई पड़ती थी। ये दोनों जातियाँ प्रसिया के निकट थीं और कनिंघम[1] के मतानुसार यह क्रमशः टालमी की 'मोन्डले' जो पाटलिपुत्र के दक्षिण में गंगा के दाहिने किनारे पर निवासित थी तथा 'सवरो' थी जिनका व्यवसाय लकड़ी काटना था तथा कोई निश्चित निवास-स्थान न था। मेगास्थनीज़ का यह अनुमान ठीक प्रतीत होता है क्योंकि यह स्थान भी ट्रापिक आफ़ कैन्सर (कर्कवृत्त) पर स्थित है। मेगास्थनीज़ ने लिखा है[2] कि शरद्‌ऋतु में साधु नग्न होकर धूप में निकलते थे और ग्रीष्मऋतु की प्रचण्ड धूप में घास अथवा भूमि पर पड़े रहते थे।

इनके अतिरिक्त किसी और यूनानी इतिहासकार ने भारत की जलवायु का वर्णन नहीं किया है। उन्हें भारत आने का अवकाश न मिला इस कारण वे इसका अनुभव न कर सके।

जातियाँ तथा सामान्य पुरुष—जलवायु का प्रभाव सुगठन और बनावट पर अधिक पड़ता है। अत्यन्त गर्म और कोमल जलवायु से शरीर बहुत अच्छा नहीं रह पाता है। हेरोडोटस[3] ने भारतीयों को काला कहा है जिसका कारण उसने प्रचण्ड गर्मी लिखा है। नदी के दलदली भाग में रहनेवाले पुरुषों का जीवन सूखी मछलियों पर ही निर्भर था। इसके अतिरिक्त कुछ जंगली पुरुष भी थे[4]। पहिली भाँति के पुरुषों से उसका संकेत अनार्यों से रहा होगा जो सिन्ध-प्रदेश के निवासी थे। टेसियसवाला भारतीयों

१—देखिए, प्राचीन 'भूगोल' पृ० ५०८—९। २—आरियन इन्डिका अंश ११। ३—२३. १००। ४—३. ९८; ३. ९९।

का वृत्तान्त हेरोडोटस के वृत्तान्त से अवश्य बढ़-चढ़कर है। उसने आर्यों तथा अनार्यों में भिन्नता दिखाई है। उसका कहना[1] है कि कुछ ऐसे पुरुष थे जो बैकट्रिया के मनुष्यों की भाँति श्वेत वर्ण के थे। उस समुदाय की दो स्त्रियों और पाँच महानुभावों को उसने ईरानी राजसभा में देखा था। इसके विपरीत उसने उन अनार्यों का भी उल्लेख किया है जो प्राकृतिक रूप से काले थे, न कि सूर्य की गर्मी के कारण। इसमें उसका मत हेरोडोटस के वृत्तान्त से विपरीत है, क्योंकि उसने काले होने का कारण केवल सूर्य की गर्मी बतलाया है[2]। टेसियस ने यह भी लिखा है[3] कि भारतीय १३०, १४० और कभी-कभी २०० वर्ष तक जीवित रहते थे तथा यह केवल उनके रहन-सहन का प्रभाव था। वे बहुत कम रुग्ण होते थे। जातियों के सम्बन्ध में उसने उन बौनों का भी उल्लेख किया है जो मध्य भारत में रहते थे। उनकी नाक चपटी और उनकी ऊँचाई दो क्यूबिक से अधिक न थी[4]। इन बौनों का विवरण उत्तरकालीन इतिहासकारों में स्ट्राबो[5] और प्लिनी[6] ने भी किया है।

निअरकस[7] ने भारतीयों को निरोग कहा है, क्योंकि वे बहुत समय तक जीवित रहते थे तथा रोगहीन थे। आनेसिक्राइटस[8] ने इनकी आयु की पड़ता १३० वर्ष कहा है जो टेसियस के अनुमान से मिलता है, किन्तु उसका कथन है कि कालापन पानी के कारण था। उसने आगे लिखा है[9] कि पानी से विदेशी पशु भी देशी हो जाते थे। इसका अनुमोदन उसने इस भाँति किया है कि यद्यपि ऐथोओपिया

१—अंश १। २—३. १०६। ३—अंश १५। ४—देखिए ऋग्वेद ७. २१. ५, १०. ६६. ३। ५—१५. १. ५७। ६—पृ० ७. २। ७—आरियन इन्डिका अंश १५। ८—स्ट्राबो १५. १. ३४। ९—यही १५. १. २४।

के निकट सूर्य उतना प्रचंड नहीं फिर भी वहाँ के निवासी काले होते हैं। इस देश के पुरुषों का विवरण करते हुए मेगास्थनाज़[1] ने लिखा है कि प्राचीन काल में सीरिया-निवासियों की भाँति भारतीय भी जंगली थे परन्तु उसके समय में भारतवासी उच्चकोटि की सभ्यता को प्राप्त कर चुके थे। उसने इनका पूर्ण वृत्तान्त लिखा है[2] तथा कार्यानुसार इनको विभाजित किया है। यद्यपि प्राचीन प्रथा के अनुसार समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में विभाजित था तथापि मेगास्थनीज़ ने इसे ७ भागों में बाँटा जिनका वृत्तान्त 'समाज' के अध्याय में दिया जायगा।

स्ट्रावो[3] का कथन है कि भारतीयों का कालापन सूर्य के कारण था। इस गर्मी का त्वचा के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ता है। ऐथीओपियनों का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है कि यद्यपि सूर्य उनसे दूर था फिर भी उनके सिर पर रहता था। इस कारण वहाँ बहुत गर्म था जिसके फलस्वरूप वहाँ के निवासी काले थे तथा उनके बाल घूँघरवाले थे। भारतीयों में इस प्रकार के लक्षण न थे। प्लिनी[4] ने इसका अधिक वृत्तान्त नहीं लिखा है, यद्यपि कहीं-कहीं पर उसने विचित्र जातियों का उल्लेख किया है। आरियन[5] का कथन है कि भारतीयों और ऐथीओपियनों की आकृति में कोई विशेष भिन्नता न थी। दक्षिण-पश्चिम के निवासी इन ऐथीओपियनों से बहुत मिलते-जुलते थे क्योंकि वे काले थे पर उत्तरी भारत के निवासा मिश्रियों से मिलते थे।

पूरे वृत्तान्त से यह पता चलता है कि इन यूनानियों ने

१—आरियन भश ७। २—स्ट्रावो १५. १. ४०-४१। ३—वही १५.

दो प्रकार के भारतीयों को देखा। एक तो श्वेत वर्ण के थे जो बैकट्रियन और मिश्रियों की तरह के थे और दूसरे काले तथा चपटी नाकवाले थे जो अनार्यों के वंशज थे। यद्यपि सूर्य का प्रभाव उनके रंग पर अवश्य पड़ता था तथापि उनके काले होने का यह मुख्य कारण न था।

पशुवर्ग—वनस्पति और पशुवर्ग का विवरण एक ही साथ होना चाहिए, किन्तु इस 'अध्याय' में केवल पशुवर्ग का ही वर्णन किया जायगा, क्योंकि पुरुषों के साथ उनका सम्बन्ध है। वनस्पति का विवरण आर्थिक अवस्था के 'अध्याय' में किया जायगा। हेरोडोटस[१] ने केवल ऊँट का उल्लेख किया है जिस पर चढ़कर सोने की खोज में जाया जाता था। टेसियस[२] का वृत्तान्त इस सम्बन्ध में विधिपूर्वक तथा विस्तृत रूप से है। उसका हाथियों का कथन हास्यास्पद है। उनका प्रयोग नगर को गिराने और शत्रु की सेना नाश करने के लिए होता था। आलियन[३] ने तो उन्हें एक प्रकार की दीवाल कहा है जिसके पीछे पुरुष सुरक्षित होकर खड़े हो सकते थे। झेलम की लड़ाई में यूनानी तारमारों के सम्मुख वे ठहर न सके। टेसियस ने नर और मादा हाथियों का उल्लेख करते लिखा है कि मादा जब गरम हो जाता थी तो उसके ललाट से मदनजल निकलने लगता था[४]।

टेसियस[५] ने सिंह और गाय का उल्लेख नहीं किया है; किन्तु उसने 'मार्तिखोरा' या 'मनुष्यभक्षी' चीते का वृत्तान्त दिया है। उसके तीन ओर दाँत, नीली आँखें तथा सिन्दूर के रंग की दुम होती थी। इस इतिहासकार ने जंगली

१–३. १०३। २–अंश ३। ३–१७, २७। ४–अंश ३। ५–अंश ७।

गर्दभों का भी उल्लेख किया है[1] जिनके बड़े-बड़े सींग होते थे। इन सींगों के प्याले बनाये जाते थे जो बीमारियों से अच्छा कर देते थे। इन खरों की समानता वर्त्तमान बारहसिंगों से की जा सकती है जिसके सींगों में गठिया इत्यादि बीमारी को अच्छा करने का प्रभाव रहता है। टेसियस ने शुक अथवा तोते का भी वर्णन किया है[2]। इसकी पुरुष की ऐसी बोली, श्येन पक्षी अथवा बाज़ की ऐसी आकृति, छोटी सी काली दाढ़ी और सिन्दूर रंग की लाल चोंच होती थी। शुकों का यह वर्णन पहाड़ी तोतों से अधिक समानता रखता है। यद्यपि वे पुरुष की बोली नहीं बोल सकते फिर भी कुछ शब्द जैसे 'सीताराम' इत्यादि कह सकते हैं। आलियन[3] ने उसका समर्थन किया है। टेसियस ने भारतीय गीदड़ का भी उल्लेख किया है[4]। उसने इसे 'क्रोकोटोस' (संस्कृत क्रोष्टुक) कहा है। इसका वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि मनुष्य की बोली का यह अनुकरण कर सकता है. तथा इसमें सिंह की इतनी शक्ति और घोड़े का इतना वेग है। यद्यपि यह वृत्तान्त पूर्णतया सत्य नहीं तथापि नाम से यह पशु गीदड़ प्रतीत होता है।

अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों ने हेरोडाटस के ऊँट या टेसियस के शुक अथवा गीदड़ का उल्लेख नहीं किया, केवल आनेसिक्राइटस[5] ने इतना कहा है कि हाथी की आयु ३०० वर्ष की होती था जो अधिक है। निअरकस[6] का कहना है कि हाथी का मूल्य इतना अधिक था कि यदि किसी स्त्री को अपनी ससुराल से हाथी मिला तो वह बड़ी भाग्यवती समझी जाती थी। इन इतिहासकारों ने

१—अंश २५, २६। २—अंश ३। ३—१६, २१। ४—अंश ३२।
५—स्ट्राबो १५. १. ४३। ६—वही।

सर्पों का भी उल्लेख किया है। अनेसिक्राइटस का कहना है[1] कि अभिसार के राजा के यहाँ दो सर्प थे, एक ८०, और दूसरा ४० क्यूबिक लम्बा। निअरकस[2] का कथन है कि छोटे सर्प अधिक भयङ्कर होते थे और प्रायः तम्बू, वर्त्तन, और दीवालों से निकलते थे। उसने चीते की खाल का उल्लेख किया है[3] किन्तु उसने कभी चीता नहीं देखा। मेगास्थनीज़[4] ने सबसे पहले घोड़ों का कथन किया है। उसने यह भी बतलाया है कि किस प्रकार से हाथी पकड़े और पाले जाते थे[5]। पशुओं का वृहत् वृत्तान्त प्लिनी और आलियन की पुस्तकों में संगृहीत है। प्लिनी की ८, १०, ११ और १७ पुस्तकों में पशुओं का वृत्तान्त है। आलियन ने तो एक सम्पूर्ण पुस्तक ही पशुओं पर लिख दी। प्लिनी ने हाथी[6], अजगर[7], चीता[8], एक वेगवान् पशु व एक सींगवाला बैल[9], सांड[10], बन्दर[11], छिपकली[12] और जंगली सुअरों का उल्लेख किया है।

समुद्र के जीव-जन्तुओं में प्लिनी ने ह्वेल[13], प्रिसटिस तथा वलैना[14] का वर्णन किया है। समुद्र में एक प्रकार के कछुए भी होते थे[15] जिसका ढाँचा पूरे कमरे की छत को पाट सकता था। पक्षियों में प्लिनी ने शुक का उल्लेख भी किया है[16] और उसने यह भी लिखा है कि वह मनुष्य की बोली का अनुकरण कर सकता था।

आलियन[17] ने इन सब पशु-पक्षियों के अतिरिक्त मोर का

१—स्ट्राबो १५. १. २८। २—यही १५. १. ४५। ३—आरियन इन्डिका अरा १५। ४—आलियन १३. १०। ५—स्ट्राबो १५. १. २५। ६—पु० ८. ८। ७—८. २। ८—८. २५। ९—८. ३०। १०—८. ३१। ११—८. ६०। १२—८. ७८। १३—९. २। १४—९. ३। १५—९. १२। १६—पु० १०. ४१। १७—पु० ५. २१।

भी वर्णन किया है । करकियन अथवा मैना का विवरण देते हुए उसने लिखा है[1] कि शुक की तरह यह भी मनुष्य की बोली का अनुकरण कर सकती थी । इसने मुर्गों का भी उल्लेख किया है[2] । आलियन की पुस्तक सब प्रकार के पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तुओं के वृत्तान्तों से भरी हुई है जिसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि यह विषय पशुविद्या से सम्बन्ध रखता है। यहाँ केवल इतना ही कह देना उपयुक्त है, क्योंकि पुरुषों का इनसे सम्बन्ध था ।

भौगोलिक वृत्तान्त को समाप्त करते हुए इस बात का अनुमान करना ही पड़ेगा कि यूनानी इतिहासकारों ने भौगोलिक दृष्टिकोण से यहाँ की एकयता को सराहा है । यह एकयता अब तक चली जाती है और भारत के मानचित्र पर दृष्टि डालने से यह पूर्णतया प्रतीत हो जाता है । भारत दूसरे देशों से अबाध्य रूप से पृथक् है । इसकी प्राकृतिक सीमाएँ अनुलंघनीय हैं और किसी विदेशी का भारत पर सत्ता जमाना कठिन है किन्तु ऐतिहासिक प्रभाव के सामने उसे झुकना पड़ा जिन्होंने भारत की जीवनी में परिवर्तन कर दिया । अनार्यों के समय के पश्चात् आर्यों ने इसे सांस्कृतिक और सभ्यता के क्षेत्र में एक श्रेष्ठ स्थान पर पहुँचाया और इसी के फलस्वरूप इन यूनानी इतिहासकारों ने इस सभ्यता का तुलना मिश्र तथा दूसरे बढ़े-चढ़े देशों से की ।

तृतीय अध्याय

राज्य-शासनविधि

यद्यपि भूगोल ने भारतवर्ष को अन्य देशों से पृथक् कर दिया है तथापि ऐतिहासिक शक्तियों का प्रभाव प्रबल था जिसके फलस्वरूप यहाँ का राजनैतिक जीवन भिन्न-भिन्न काल में पृथक् रहा। आर्यों के प्रवेश से उत्तरी भारत में उनकी सत्ता स्थापित हुई जैसा कि ऋग्वेद[1] से अनुमान निकलता है जिसमें आर्यों का अनार्यों के साथ युद्ध का उल्लेख है। उनका प्रभाव दूर तक फैल चुका था तथा उस समय यहाँ बहुत से राज्य थे। दश राजाओं के युद्ध का विवरण ऋग्वेद[2] में मिलता है। उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में भी बहुत से राजाओं का उल्लेख है, जैसे कुरुपाञ्चाल[3], कोशल, काशी, विदेह[4] आदि का। इनका कुछ वृत्तान्त उस समय के संस्कृत-साहित्य में भी प्राप्त है। इससे, हम इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि यद्यपि भारत की भौगोलिक ऐक्यता थी तथापि राजनैतिक क्षेत्र में इसका अभाव था और इतिहासकारों ने स्वभावतः किसी एक राज्य अथवा बहुत से राज्यों का वृत्तान्त लिखा। यूनानी इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न समय के भारतीय राज्य-शासन-विधानों का वर्णन किया है।

ईरानी प्रभुता—हेरोडोटस नामक प्रथम यूनानी

१–१. ४०. ७–८; ४. १६. १३; १०. २२. ८। २–७. ३३, २. ५। ३–शतपथब्राह्मण ііі २. ३. १५। ४–वही १. ४. १. १०।

इतिहासकार ने उत्तरी-पश्चिमी भारत पर दारयवुष तथा उसके वंशजों के अधिकार का वर्णन किया है[1] जिसका समर्थन विहिस्तां, परसीपोलिस और नक्सीरुस्तम के लेखों से होता था, जो ईरानी सम्राट् दारयवुष ने खुदवाये थे। एक स्थान पर उसने लिखा है[2] कि सम्राट् दारयवुष ने केसाइलक्स को सिन्धु नदी की खोज लगाने के लिए भेजा था। यह साहसिक यात्रा कसपैपिरस (कश्यपपुर) नामक सिन्धु नदी के उत्तरी भाग पर स्थित नगर से आरम्भ हुई। इसके पश्चात् उसने इस स्थान पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया और इसे अपने साम्राज्य की बीसवीं क्षत्रपी बनाया[3]। परसीपोलिस के लेख के अनुसार यह दारयवुष की बीसवीं क्षत्रपी थी। स्मिथ ने लिखा[4] है कि यद्यपि भारतीय क्षत्रपी की सीमा नियुक्त करना कठिन है तथापि यह पेरिया (हेरात), अराकोशिया (कन्धार) तथा गन्धारिया (गान्धार) से भिन्न थी। उस क्षत्रपी में काला-बाग्र से दक्षिण में सिन्ध का पूरा प्रदेश तथा पंजाब का कुछ भाग भी सम्मिलित रहा होगा।

सिंधु नदी से सम्बन्ध रखनेवाली ईरानी सम्राट् की और क्षत्रपियों में गांधार (काबुल की घाटी का प्रदेश), ढढगू (ग़ज़नी के दक्षिण-पश्चिम का भाग अथवा उत्तर-पूर्व में हज़ारा का प्रांत), हरावती (कन्धार का निकटवर्ती देश), शक (सास्तान तथा हामुन झील के निकट का भाग) तथा मकरान (बलूचिस्तान) थीं। इससे प्रतीत होता है कि यह भारतीय क्षत्रपी से भिन्न था। हेरोडोटस का कहना है[5] कि भारतीय क्षत्रपी कोई ३६० टेलेन्ट सोने की राख, जो

१—३, ६८। २—४, ४४। ३—३, ६५। ४—भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास पृ० ४०। ५—३, ६७।

वर्तमान काल में कोई १२ लाख पौंड की होती है, ईरानी सम्राट् को देती था। ईरानी आधिपत्य ज़रकसाज़ (ई० पू० ४८६-४६५ तक) के समय में भी रहा। दारयवुष के इस पुत्र और उत्तराधिकारी ने एक बड़ी सेना लेकर, जिसमें भारतीय सैनिक भी थे, यूनान पर धावा बोल दिया पर इसमें उनकी हार हुई[1]। हेरोडोटस का कहना है कि इस ईरानी सेना में भारतीय सैनिक आर्टाज़रकसीज़ के पुत्र फरमज़थरेस की अध्यक्षता में ईरानी सम्राट् की ओर से युद्ध करने गये थे[2]। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय तक ईरानियों का उत्तरी-पश्चिमी भारत पर आधि-पत्य था।

ईरानी सम्राट् आर्टाज़रकसीज़ के राजवैद्य टेसियस को (४१६-३६७ ई० पू० तक) जब कि वह ईरान की राजसभा में था, भारतीय राजनीति के अवलोकन का अवकाश अवश्य रहा होगा, किन्तु उसने न तो ईरानी आधिपत्य का उल्लेख किया है और न यह कहा है कि किस प्रकार भारत का यह भाग ईरानी सम्राट् के हाथ से निकल गया। उसका कथन[3] है कि एक राजा के प्रति पुरुषों की श्रद्धा और अनुराग था। उसकी प्रभुता बहुत दूर तक फैली थी। तीन सौ चौने, जो चतुर धनुषधारी थे, धनुषविद्या में अपनी प्रवीणता के कारण, उसकी राजसभा में उपस्थित हुए। टेसियस का यह वृत्तान्त असन्तोषजनक है, यद्यपि उसे उस समय की राज्य-शासनविधि तथा राज्यों की स्थिति देखने का अवसर था।

भारतीय प्रजातन्त्र तथा राजतन्त्र देश—अलिकसुन्दर

१—२. ६७। २—७. ८६, देखिए, केम्ब्रिज प्राचीन इतिहास जिल्द ४, पृ० १६०। ३—अंश १४।

(सिकन्दर) के इतिहासकारों ने प्रजातंत्र और राजतंत्र देशों का वर्णन किया है। अलिकसुन्दर का समय एक देश से युद्ध और दूसरे से संधि करने में व्यतीत हुआ। यद्यपि इन सब राज्यों के नाम अरिस्टोबोलस, निअरकस तथा आनेसिक्राइटस ने नहीं दिये थे क्योंकि उनका पुस्तकें लुप्त हो चुकी हैं तथापि बचेखुचे अंश तथा उत्तरकालीन इतिहासकारों के वृत्तांत से, जिनमें मुख्यतया स्ट्राबो और प्लिनी के हैं, उस समय के कुछ प्रजातंत्र तथा स्वतंत्र देशों का पता चलता है। इन प्रजातंत्र राज्यों के विषय में निअरकस का कहना[1] है कि एक राज्य में भारतीय सम्राट् को यूनान की भाँति दण्डवत्-प्रणाम नहीं वरन् हाथ जोड़कर नमस्कार ही किया जाता था। इससे भारतीयों में दासता और भृत्य भाव का अभाव प्रकट होता है। वे अपने को किसी प्रकार से गिरे हुए नहीं समझते थे तथा राजा की रक्षा और शांति का पूर्ण भार उन्हीं पर था। एक राज्य के सम्बन्ध में आनेसिक्राइटस[2] लिखता है कि भारतीय सम्राट् सुन्दरता की दृष्टिकोण से चुने जाते थे, तथा कुरूप राजा सिंहासन से उतार दिये जाते थे। यहाँ सुन्दरता एक विस्तीर्ण भाव में ली गई है और इससे उनका प्रयोजन केवल शारीरिक सुन्दरता से ही नहीं वरन् शुद्ध आचरण तथा आरोग्यता से भी था। इसका प्रमाण महाभारत के उद्योगपर्व मे लगता है[3] जिसमें लिखा है कि प्रतीप के पुत्र देवापि के सिंहासनारूढ़ के समय में प्रजा ने अनुमति नहीं दी क्योंकि वह कुष्टरोग से ग्रसित था। कहा जाता है कि प्राचीन काल में विचित्रवीर्य को भी निकाला गया था क्योंकि वह अत्यन्त भोगविलासी था। इसलिए यहाँ यह

१—स्ट्राबो १५. १. ३० । २—वही । ३—अध्याय १४९ ।

कहना अनुपयुक्त न होगा कि राजतंत्र राष्ट्रों में भी प्रजातंत्र, के लक्षण पाये जाते थे और राजा अपनी रक्षा के लिए प्रजा पर अवलम्बित था। यह प्रवृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही थी जैसा कि महाभारत से पता चलता है और यूनानी इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है।

व्यवस्थित राजतंत्र राष्ट्रों, जिनमें प्रजातंत्र के लक्षण पाये जाते थे, के अतिरिक्त बहुत से प्रजातंत्र राष्ट्रों का भी समूह था। अरिस्टोबोलस[1] के वृत्तांत से यह स्पष्ट है कि मालवियों (मल्लाई) तथा आकसीड्रकाई ने मिलकर अलिकसुन्दर का सामना करने का दृढ़ विचार कर लिया। उस राजनैतिक विपत्ति में उन्होंने देश-प्रेम तथा पराक्रम का प्रमाण दिया। मसागा की रक्षा के समय में आश्वक सम्राज्ञी की अध्यक्षता में आश्वकायन (असेकनास) तथा अभिसार (अभिसेराओं) की संधि हुई थी[2]। संयुक्त राष्ट्रीयता की झलक उस समय पूर्णतया दिखाई पड़ती थी। राजनैतिक विचार बढ़े-चढ़े थे और वे समझते थे कि राष्ट्र की आज्ञा वास्तव में उन्हीं की आज्ञा थी क्योंकि जनसमूह ही राष्ट्र कहलाता था। उस समय में अपराध कम होते थे। आनेसिक्राइटस[3] का कहना है कि हत्या और शरीराक्रमण के अतिरिक्त और किसी अपराध के लिए अधिक दण्ड नहीं दिया जाता था। इसलिए धन से शरीर की रक्षा का अधिक मूल्य था क्योंकि पुरुष सत्यवादी थे।

यूनानी इतिहासकारों ने निम्नलिखित भारतीय सम्राटों का उल्लेख किया—तक्षशिला का वृद्ध सम्राट् टैक्साइलस[4] जिसने अलिकसुन्दर के पास राजदूत भेजा था। उसका प्रयोजन तक्ष-

---

१—आरियन ६ (७)। २—आरियन ४, २७। ३—स्ट्राबो १५. १. ३४। ४—मैक्रान्डिल—अलिकसुन्दर का आक्रमण पृ० २०७।

शिला का रक्षा के बदले यूनानी सम्राट् की सहायता करना था। स्ट्रावो के मतानुसार इसका राज्य सिन्धु और झेलम के बीच में सीमित था। यहाँ के धर्मसिद्धान्त विधिपूर्वक थे। इस सम्राट् ने अपने देश के साथ विश्वासघात किया। झेलम तथा चिनाव के अन्तस्थ पोरस का राज्य था[२]। उसने अपने निकटवर्त्ती अभिसार के राजा के साथ सम्मिलित होकर उस विपत्ति-काल में भारत की लाज रक्खी। इन दोनों नदियों के बीच में दक्षिण की ओर शौभूति का राज्य था[३]। शशिगुप्त नामक एक दूसरा सम्राट् अलिकसुन्दर के साथ था। कदाचित् सीमा प्रान्त की किसी पहाड़ी पर उसका राज्य रहा होगा। वह ईरानियों को अलिकसुन्दर के विरुद्ध सहायता देने के लिए वैकट्रिया गया था किन्तु उसका ध्यान बदल गया और वह अलिकसुन्दर से मिल गया[४]। अष्टकेनाई के राजा अस्तिस को भी अपने देश से अनुराग था। हिफेस्टियन द्वारा तीस दिन घिरे रहने के पश्चात् लड़ते-लड़ते वह वीरगति को प्राप्त हुआ[५]। यह प्लूकाटिस देश का राजा था जो स्वात नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित हस्तिनगर अथवा आठ और नगरों से सम्बन्ध रखता था जिसमें से एक पुष्कलावती थी जो गान्धार की राजधानी थी[६]। मसागा का नृप आश्वकायन (अशेकनास) एक और देशभक्त था जिसने अलिकसुन्दर के आक्रमण को रोककर वीरगति प्राप्त की[७]। यह उन स्वतन्त्र पुरुषों का देश था जो अशपसिआई कहलाते थे और जिन्हें पाणिनि ने अशमक कहा है।

१—१५. १. २८। २—यही १५. १ २६। ३—यही १५. १ ३०। ४—आरियन ४. ३०। ५—आरियन ४. २२। ६—कनिंघम—प्राचीन भारतीय भूगोल पृ० ५०। ७—आरियन ४. २७।

३२६ ई० पू० के वसन्त में अलिकसुन्दर ने सिंधु नदी को पारकर तक्षशिला में पहला विश्राम किया[1]। यहाँ पर ङाक्सोनिस ने आत्मसमर्पण किया। नदी के पार पौरव का राज्य था[2]। चिनाव के उस ओर दो अन्तिम राजे, जिनसे उसे सामना करना पड़ा, शौभूति और फ़ेगेलास थे। दोनों ने अपने को समर्पण कर दिया। वापसी में उसे राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र राज्य मिले। उनमें से अद्रिस्ताई ने समर्पण कर दिया किन्तु कठ (कथियाई), जो अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे, युद्ध करने को तैयार थे[3]। झेलम और चिनाव के संगम पर रावी और व्यास के अन्तस्थ में (मल्लाई) मालवीयो, तथा रावी और व्यास के बीच के आकसीड्रकाई नामक स्वतन्त्र जातियों से उनका युद्ध हुआ[4]। शिवि और अगलसाई नामक दो और प्रजातन्त्र राज्य थे जिन्होंने भी युद्ध किया। नदी-प्रवाह के नीचे अवस्टेनेस, जिन्हें पाणिनि ने अम्बष्ट कहा है, क्षुद्रक (जैथ्रिओ) और ओसदी रहते थे जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया[6]। दक्षिण की ओर बढ़ते हुए अलिकसुन्दर साम्ब्डियो, जहाँ ब्राह्मणों की सत्ता थी, मूषिक (मुशिकनस) जो निकटवर्ती राजा सम्बुस से वैमनस्य रखता था तथा आकसीकैनस के देशों से होकर निकला[7]। अन्तिम चेष्टा पटाला की ओर थी जहाँ के निवासियों ने आत्मसमर्पण कर दिया[8]। यहाँ के राजा का उल्लेख नहीं है।

मौर्य-साम्राज्य—मेगास्थनीज़ कई वर्ष तक पाटलिपुत्र में रहा। इस कारण उसे शासन पद्धति के अवलोकन

१—यही ५. ८। २—यही ५. २१। ३—यही ५. २२। ४—यही ६. ४। ५—४. १. ७४। ६—आरियन ६. १५। ७—आरियन ६. १६। ८—यही।

का अवसर प्राप्त हुआ। उसकी मौर्य-नीति के वृत्तान्त का अनुमोदन कौटिल्य के अर्थशास्त्र से होता है। उसने लिखा[1] है कि साम्राज्य का अधिपति राजा था और उसका अधिकार सब कार्यों पर था। वह अपना प्रासाद केवल युद्ध के समय मे ही नहीं त्यागता था, वरन् शासन-प्रबन्ध में उसका बड़ा हाथ था। वह न्याय का सबसे उच्चपदाधिकारी था और हर प्रकार के झगड़े निपटाता था। न्याय-सभा में वह अपना पूरा दिन बिता देता था और जैसा कि मेगास्थनीज़ ने लिखा है[2], प्रार्थी को अधिक काल तक नहीं ठहरना पड़ता था। जिस समय सम्राट् स्वय उनसे नहीं मिल सकता था तो अपने अधीन पदाधिकारियों को उनसे मिलने को कह देता था[3]। वह स्वयं वेदों के ज्ञाता, ब्राह्मण, पशु, पवित्र स्थान, बालक, दुखित, असहाय और स्त्रियों के प्रार्थना-पत्र सुनता था। आवश्यक कार्यों में लेशमात्र भी विलम्ब नहीं किया जाता था।

संग्राम के दृष्टिकोण से सम्राट् का सन्तोष केवल युद्धभूमि पर सेना भेजने ही से नहीं था वरन् वह अपने निजी कार्यों को त्याग कर स्वयं राजधानी से युद्धभूमि जाकर सैनिकों को उत्तेजित करता था[4]। उसकी वीरता और साहस ने सिल्यूकस की पुत्री हेलेन को अपना लिया और उसे स्वयं उसके साथ सन्धि करनी पड़ी। अपनी पुत्री के अतिरिक्त उसे ५०० हाथियों के बदले में अफग़ानिस्तान, काबुल, हेरात तथा गन्धार-प्रदेश देने पड़े[5]। इससे यह प्रतीत होता है कि राजा ने विपत्ति का स्वयं सामना किया और अन्त में उसे सफ-

---

१—अश २७; स्ट्राबो १५. १. ५३। २—यही। ३—कौटिल्य अर्थशास्त्र १०. ६८। ४—अश २७, स्ट्राबो १५. १. ५३। ५—स्ट्राबो १५. १. १६।

लता प्राप्त हुई। संग्राम के शासन-प्रबन्ध का विवरण आगे किया जायगा।

शासन प्रबन्ध में सम्राट् के अधीन सचिव तथा प्रधान थे जो सम्राट् को छोड़कर न्याय तथा प्रबन्ध के उच्च पदाधिकारी थे[1]। मेगास्थनीज़ के कथनानुसार वह सप्तम श्रेणी में थे। उनकी समानता कौटिल्य के अमात्य और सचिव से की जा सकती है जो १२ अथवा १६ जन की सबसे बड़ी सभा के सदस्य थे[2]। मेगास्थनीज़ ने यह नहीं लिखा है कि कौन सचिव किस विषय का पदाधिकारी था।

सम्राट् की रक्षा का भार प्रासाद के आन्तरिक भाग में स्त्रियों के रक्षक दल के हाथ में था। बाहर बर्छों से सुसज्जित सैनिक रक्षा के लिए नियुक्त थे[3]। सम्राट् का जीवन भय से रहित न था और अपने प्राणों को षड्यन्त्र से बचाने के लिए उसका किसी एक स्थान पर शयनगृह निश्चित नहीं रहता था। षड्यन्त्रों को तोड़ने का सहज उपाय यही था कि क्रमशः दो रात्रि किसी एक स्थान पर न रहे। नन्दों का विनाश कर उसने स्वयं राज्यापहरण किया था, इसलिए उसे अपनी रक्षा के लिए सदैव उद्यत रहना पड़ता था। इतना सब होते हुए भी समाट् अपने कार्यों में सदैव तत्पर था। कभी-कभी वह अपने प्रासाद से राजयज्ञ के समय अथवा आखेट को निकलता था[4]। उस समय सड़कों के दोनों ओर रस्सी बाँध दी जाती थी तथा उसके बाहर जाने के लिए मृत्यु दण्ड निश्चित था।

प्रान्तिक शासन अथवा मौर्य-साम्राज्य के प्रान्तों का मेगास्थनीज़ ने उल्लेख नहीं किया है। अर्थशास्त्र में प्रान्तों

१—स्ट्राबो १५. १. ४८। २—१. १५। ३—अंश २७; स्ट्राबो १५. १. ५३। ४—यही।

की कोई गिनती नहीं लिखी है। अशोक के धर्मलेखों[1] में प्रान्तीय राजधानियों, तक्षशिला, उज्जैन, तोशली तथा स्वर्णगिरि का अवश्य उल्लेख है और इसकी सत्यता का प्रमाण दिव्यावदान[2] तथा महाबोधिवंश[3] से भी लगता है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि यही प्राचीन राजधानियाँ सम्राट् चन्द्रगुप्त ने स्थापित की हों और उसके पौत्र अशोक ने उसी का अनुकरण किया। इतने बड़े साम्राज्य के सुशासन की साध्यता का केवल यही उपाय था जब कि एक कोने से दूसरे कोने तक समाचार पहुँचने में कोई ६ मास से कम नहीं लगते थे। इन प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण प्रान्तिक शासन से ही इतने बड़े साम्राज्य का सुचारु रूप से प्रबन्ध हो सकता था।

केन्द्रीय और प्रान्तीय के अतिरिक्त मेगास्थनीज़ ने स्थानिक शासन-प्रबन्ध का भी वर्णन किया है[4]। इसमें अत्यन्त सुचारुता थी। उच्चपदाधिकारियों में कुछ हाट के प्रबन्धक थे, कुछ नगर के और कुछ का सैनिकों से सम्बन्ध था। कुछ नदी की देखभाल करते थे जिससे कोई पुरुष जल में विष न मिला सके और न पानी का मैल इत्यादि से गन्दा कर सके। नहरों की देखभाल की जाती थी जिसमें सब स्थानों में पानी पहुँच सके। कुछ पदाधिकारी कर वसूल करते थे और भूमि तथा व्यवसायी कलाओं से सम्बन्धित व्यापारों की देख भाल करते थे। जनता के हितार्थ विभाग भी इसी स्थानिक शासनप्रणाली के लाभ का कार्य करता था। ग्रांड ट्रंक रोड इसी का एक नमूना था।

नगर का बोर्ड वर्तमान म्यूनिसिपल बोर्ड की भाँति

१—कलिंगलेख १ और २। २—पृष्ठ ४०७। ३—पृ० ६८
४—ग्रन्थ २४, स्ट्राबो १५ १, ५०–५२।

नागरिकों के हितार्थ कार्य करता था[1] और उसमें ३० सदस्य थे जो ६ कमेटियों में विभाजित थे। हरएक कमेटी के पाँच सदस्य थे। प्रथम व्यवसाय से सम्बन्ध रखती थी, दूसरी विदेशियों का ध्यान रखती थी। इसका कार्य केवल उनके ठहरने का प्रबन्ध ही करना न था वरन् यह देखभाल करना भी अत्यावश्यक था कि वे विदेशी जासूस तो नहीं थे। उनकी रक्षा का भार इसी कमेटी पर था। तीसरी कमेटी जन्म और मृत्यु का हिसाब रखती थी। उसका काय यह भी था कि मृत्यु का कारण खोज करे जिससे यह पता चल सके कि उच्चश्रेणी तथा निम्नश्रेणी में प्रतिशत मृत्यु-संख्या कितनी रही। चौथी कमेटी व्यापार तथा वाणिज्य से सम्बन्ध रखती थी। यह नाप-तौल के बाँट को देखती थी तथा यह ध्यान रखती थी कि व्यापारियों में किसी प्रकार की अनुचित स्पर्द्धा न हो जिससे छोटी पूँजीवाले व्यवसायियों का हनन न हो सके। कोई पुरुष एक से अधिक व्यवसाय नहीं कर सकता था जब तक कि वह दुगना कर न दे। पाँचवीं कमेटी वस्तुओं के बनने पर ध्यान देती थी जो हाट में बेची जाती थीं। इस सम्बन्ध में यह निर्णीत था कि नई और पुरानी चीज़ें अलग-अलग बेची जायँ। इस नियम के उल्लंघन पर लम्बा जुर्माना होता था। धोखे और जाल से बचने का यह एक सीधा उपाय था क्योंकि नई और पुरानी चीज़ें मिलाकर लोग अधिक लाभ उठाना चाहते थे। छठी कमेटी बिकी हुई वस्तुओं पर कर लगाती थी।

सैनिक प्रबन्ध भी ३० सदस्यों के एक बोर्ड[1] द्वारा होता था जिसकी पाँच कमेटियाँ थीं[2]। पहली का सम्बन्ध बेड़े

१–वही। २–श्रंश ३४, स्ट्रायो १५. १. ५२।

के नायक से था, दूसरी का सेना के लिए सामान पहुँचाने-वाले बैलों के अध्यक्ष से, तीसरी का पैदल-सेना से, चौथी का अश्वारोही से, पाँचवीं का रथ और छठी का हाथियों के प्रबन्ध से सम्बन्ध था। इससे यह प्रतीत होता है कि सैनिक प्रबन्ध में सेनापति का आधिपत्य न था। चन्द्रगुप्त ने पहले ही सोच लिया था कि सेनापति के हाथ में पूरी बागडोर का क्या परिणाम होगा जैसा कि मौर्य सम्राट् बृहद्रथ के साथ आगे चलकर उसके सेनापति पुष्यमित्र सुशुंग ने किया। सम्राट् की हत्या करके उसने राज्य-शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथ में ले ली[1]।

सम्पूर्ण शासनप्रबन्ध की नींव गुप्तचरों पर निर्धारित थी जो परीक्षक अथवा निरीक्षक कहलाते थे[2] और उनका एक अलग सामाजिक अंग था। सब बातों की छानबीन कर वे सम्राट् को गुप्त रूप से समाचार भेजते थे। कुछ को नगर और कुछ को सेनानिरीक्षण का भार सौंपा गया था। भेद लेने के लिए यह नगर तथा सेना में अपने-अपने सहायक रखते थे। इस पद पर केवल विद्वान् और विश्वसनीय पुरुष ही नियुक्त किये जाते थे। गुप्तचरों का एक अस्थायी विभाग था। सम्राट् का जीवन भय से खाली न था और षड्यन्त्रों का पता लगाने के लिए यही एक सुलभ मार्ग था। इन गुप्तचरों द्वारा सम्राट् को नगर और सेना का पूरा पता लग जाता था।

राज्य-प्रबन्ध के लिए निर्धारित नियम थे। ये अत्यन्त कठोर थे और इनसे केवल यही प्रयोजन था कि देश में शान्ति रहे और शासन सुचारु रूप से चले। इससे यह न

१—कैम्ब्रिज भारतीय इतिहास, जिल्द १, पृ० ५१२। २—अंश ३६. स्ट्राबो १५. १. ४८।

समझना चाहिए कि जनता को इन नियमों से घृणा थी, इसके विपरीत सुशान्ति से उन्हें अनुराग था[1]। झूठी साक्षी देने पर अंग-भंग कर दिया जाता था और किसी को क्षति पहुँचाने के अपराध में केवल उसके अंग के अतिरिक्त हाथ भी काट लिया जाता था। किसी शिल्पकार के साथ अपराध करने से मृत्यु का दण्ड मिलता था।

उस समय चोरी नहीं होती थी, और जैसा कि मेगास्थनीज़ ने लिखा है[2] चन्द्रगुप्त के डेरे में, जहाँ कोई ४ लाख पुरुष रहते थे, किसी एक समय में २०० ड्राकम से अधिक की चोरी नहीं हुई। कठोर नियमों के कारण शासन-प्रबन्ध सुचारु रूप से चला जाता था पर बाद में इसकी ढिलाई मौर्य साम्राज्य के पतन का एक कारण बनी।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए यह आवश्यक था कि विदेशियों को भारतीय नागरिक पुरुषों की भाँति स्थान दिया जाय। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि राज्य की ओर से स्थानीय शासन-प्रबन्धक कमेटी थीं जो केवल विदेशियों का ध्यान रखती थी। मेगास्थनीज़के कथनानुसार[3] दूसरी कमेटी इसी लिए थी। यह इन विदेशियों के निवास का प्रबन्ध करती थी और साथ ही साथ इसका भी ध्यान रखती थी कि वे विदेशी गुप्तचर तो नहीं थे। देश से प्रस्थान के समय वे उन्हें सुरक्षित मार्ग से पहुँचाते थे और यदि मार्ग ही में उनकी मृत्यु हो जाय तो उनकी सम्पदा उनके सम्बन्धियों को भिजवा दी जाती थी। रोगित अवस्था में भी उनकी देखभाल होती थी तथा मृत्यु होने पर उनका भली भाँति संस्कार भी किया जाता था।

१—अंश २७, स्ट्राबो-१५, १, ५३। २—यही। ३—अंश ३४, स्ट्राबो १५, १, ५०।

मेगास्थनीज़-लिखित इस वृत्तान्त से मौर्य-साम्राज्य की शासन-प्रणाली का पूरा पता चलता है जो कल्पना-मात्र न थी वरन् उसका व्यापार में प्रयोग किया जाता। सम्राट् की सत्ता प्रधान थी किन्तु हिन्दू सम्राट् के नाते वह शास्त्रीय आदेशों के अनुसार शासन करता था। जनता का हित उसके निज कार्य से ऊपर था और उसके लिए वह अपने भोगविषयों को भी त्याग देता था।

मेगास्थनीज़ ने इनके अतिरिक्त कुछ छोटी जातियों का भी उल्लेख किया है जिसका वृत्तान्त प्लिनी की पुस्तक में मिलता है[1]। यह निम्नलिखित थीं—ईसरि (अज्ञात), कोस्चरि (दर्दस और कश्मीर के निकटवर्ती महाभारत में उल्लिखित कदाचित् खसिर), इज़गि (कदाचित् टालमी का सिज़येस), चिसिओटोसगी (टालमी का चिकोनल), व्रचमेन (बहुत-सी जातियों का समूह जिनमें से एक मक्कोकलिंग भी थी), मोधुबे, मोहिन्दे, यूबेरे, गल्मोड्रोसि, प्रेति कलिस्सले, ससुरि तथा आरुष्ले। इनके अतिरिक्त कुछ और जातियों का भी उल्लेख है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे काल्पनिक अथवा यथार्थ थीं।

प्राशि (संस्कृत प्राच्य) अथवा पूर्वीय प्रान्त-निवासी बल और वैभव में सबसे बढ़े-चढ़े थे। इनके विषय का वृत्तान्त सत्य प्रतीत होता है। इनकी राजधानी पालिबोथरा (पाटलिपुत्र) थी। वह केन्द्रीय शासन के अधीन थी। प्राशियों का संस्कृत-साहित्य में भी उल्लेख है। पाणिनि ने इनका वृत्तान्त दिया है[2]।

सीरियन साम्राज्य—राजनैतिक दृष्टि को पाटलिपुत्र

१—६. २१ (८-२३)। २—४.१-१७८।

से उठाकर अब सीरियन सभा की ओर ले चलना चाहिए जिसने भारतीय राजनीति पर बहुत समय तक प्रभाव डाला। यूनानी इतिहासकारों ने भी इसका विवरण किया है। प्रथम सम्राट् सिल्यूकस निकाटर ने सबसे पहले भारत पर आक्रमण किया था किन्तु इसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। इसके पश्चात् क्रमशः अंतिआकस प्रथम (ई० पू० २८१-२६१) और अंतिआकस द्वितीय थियास (ई० पू० २६१-२४६) सम्राट् हुए। अंतिआकस द्वितीय के समय में वैकट्रिया और पार्थिया में विप्लव हुआ जिसके नेता क्रमशः डायडोटस और आरसकीज़ थे। अंतिआकस द्वितीय के पश्चात् सिल्यूकस द्वितीय (ई० पू०२४६-२२६) और सिल्यूकस तृतीय (ई०पू० २२६-२२३) तथा अंतिआकस तृतीय हुए जिनका उल्लेख पोलिवियस ने किया है। पोलिवियस का कहना है कि अंतिआकस ने पार्थिया और वैकट्रिया पर, जो उस समय यूथीडामस के अधीन थी, अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु इस यूनानी ने उत्तर दिया कि अपने राज्य में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं चाहता, क्योंकि वह विद्रोही नहीं था। यूथीडामस के पुत्र तथा राजदूत डेमेट्रियस द्वारा सन्धि स्थापित हुई। इस नवयुवक ने सीरियन सम्राट् पर इतना अच्छा प्रभाव डाला कि उसने इसके सौन्दर्य पर मोहित होकर अपनी एक कन्या का विवाह इसके साथ कर दिया और सम्पूर्ण साम्राज्य से प्रतिकूलता घोषित करने के बन्धन हटा दिये अर्थात् उसे पूर्ण सम्राट् मान लिया। सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर के पश्चात् यूथीडामस के दिये हुए हाथियों को लेकर तथा अपनी सेना सँभालकर, वह कुरुप (काकेसस) पर्वत को पार करने के

बाद भारत की ओर बढ़ा[1]। यहाँ उसने भारतीय नरेश सुभगसेन से मित्रता स्थापित की और ऐड्रास्थनाज़ को धन तथा १५० हाथियों सहित घर भेज दिया। स्वयं उसने ऐराकोशिया (कान्धार) और ड्रान्जीआना (सीस्तान) के मार्ग से मेसोपोटामिया की ओर प्रस्थान किया। भारतीय इतिहास में इस सुभगसेन का कहीं उल्लेख नहीं है। डाक्टर टामस[2] ने इसका सम्बन्ध गन्धार-राजवंश से दिखाया है। लासन[3] के मतानुसार मौर्य-साम्राज्य सम्प्रति के पश्चात् छिन्न-भिन्न होना आरम्भ हो गया। बौद्धों के कथनानुसार[4] गन्धार में उस समय वीरसेन नामक राजा हुआ। डाक्टर टामस ने सुभगसेन का सम्बन्ध इसी वीरसेन से दिखाया है। हो सकता है कि वह वीरसेन का पुत्र हो। इस प्रकार से ईसा पूर्व २०५ के लगभग वह गन्धारदेश का राजा था। उसका राज्याभिषेक यदि १५-२० वर्ष पहले हुआ हो तो हम इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि सम्राट् अशोक की मृत्यु के पश्चात् सुदूर प्रान्तों में विप्लव की आग भड़क उठी और उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

इसके अतिरिक्त किसी और यूनानी इतिहासकार ने उत्तरी-पश्चिमी भारत के किसी और राजा का उल्लेख नहीं किया है, न उसका अन्य प्रान्तों से राजनैतिक सम्बन्ध दिखाया है। कई शताब्दी पश्चात् फिलास्ट्रेटस नामक यूनानी इतिहासकार ने फ्रेटश नामक एक नरेश के विषय में लिखा है, जब कि टायना के अपालोनियस ने ईसवी सन् ४८ में तक्षशिला की यात्रा की। उसने शकाधीनता को

१—वही। २—इन्डियन ऐन्टीक्वेरी १८७९ पृष्ठ ३६२। ३—यही १८७३ पृष्ठ २८३। ४—तारानाथ पृष्ठ ५०।

त्यागकर पहलव-वंश का राज्य स्थापित किया। वह बेबीलोन के सम्राट् वर्दनस के अधीन न था वरन् स्वयं अपने बल से गन्धार की क्षत्रपी पर प्रभाव रख सका[1]। यहाँ अंतिआकस तृतीय के पश्चात् का इतिहास उल्लेख करना ठीक नहीं, केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि वह पहलव था और गन्धार-प्रदेश को अधीन कर उसने तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया।

राजनैतिक दृष्टिकोण से यूनानी इतिहासकारों का वृत्तान्त किसी एक स्थान तक सीमित न रहा। ई० पू० ५ वीं शताब्दी में हेरोडोटस के समय से ईसवी की दूसरी शताब्दी तक भारतीय राज्य-क्षेत्र में कितने ही वंशों का उत्थान तथा पतन हुआ। अकमेनियन साम्राज्य, जो भारत के उत्तरी-पश्चिमी भाग तक सीमित था, छिन्न-भिन्न हो गया। मौर्य-साम्राज्य, जो वर्तमान अँगरेज़ी-साम्राज्य से भी बड़ा था, ऐतिहासिक प्रभावों के सामने न ठहर सका और भाग्यहीन होकर मिट्टी में मिल गया। क्या यही सिद्धान्त सामाजिक क्षेत्र में भी लागू था, यह अगले अध्याय का विषय है।

१—राय चौधरी-प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ ३०८।

चतुर्थ अध्याय

सामाजिक जीवन

प्राचीन भारत में राष्ट्र और समाज का विचित्र रूप था। भिन्न होते हुए भी वे एक दूसरे से पृथक् न थे। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र थे और उनके अपने ही नियम तथा अधिकार थे। सामाजिक विषयों पर राष्ट्र का हस्तक्षेप लक्ष्यमात्र था और यही सबसे अच्छी नीति समझी जाती। इन दोनों के अधिकारों की सामा एक प्रकार से विभाजित सी थी। इस सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय समाज वर्तमान पाश्चात्य समाज से भिन्न है, क्योंकि इसने अपनी सत्ता राष्ट्र को प्रायः पूर्णतया समर्पित कर दिया है और उसी के ऊपर अवलम्बित हो गई है। सामाजिक विभिन्नता के कारण राष्ट्रीय क्षेत्र में उथल-पुथल होते हुए भी प्राचीन समाज ने अपना अस्तित्व स्थापित रक्खा। एक ओर राजनैतिक युद्ध होता था और दूसरी ओर समाज अपना कार्य सुचारु रूप से चलाता था। मेगास्थनीज़ ने सत्य लिखा है[1] कि युद्ध के समय में एक ओर योद्धा अपने जीवन की बाज़ी लगाकर लड़ रहे थे और दूसरी ओर कृषक इन्हीं सैनिकों की सुरक्षता में भूमि को जोतकर अन्न बो रहे थे। इस विभिन्नता का परिणाम यह हुआ कि आज भी भारतीय हिन्दू-समाज का बहुत कुछ वही रूप है जो सहस्रों वर्ष पहले था।

१—अश ३३—स्ट्राबो १५. १. ४०।

सामाजिक भाग—वर्णाश्रमधर्म के अनुसार समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में विभाजित है किन्तु मेगास्थनीज़ के अनुसार वह सात अंगों में विभक्त था। यह क्रम मनुष्यों के कार्यों के आधार पर निर्मित था। सारांश यह है कि यह सात विभाग प्राचीन चार भागों में सम्मिलित हो सकते हैं किन्तु यहाँ पर उन सातों का उल्लेख करना ठीक है जिनका मेगास्थनीज़ ने वर्णन किया है[1]।

ब्राह्मण और दार्शनिक—यद्यपि इनकी संख्या अल्प थी तथापि यह श्रेणी प्रथम थी। इनका कार्य धार्मिक संस्कार तथा यज्ञ कराना था और इस सम्बन्ध में सार्वजनिक जनता द्वारा ये आमंत्रित किये जाते थे। सम्राट् स्वयं प्रतिवर्ष एक बड़ा यज्ञ करता था जिसमें ये भी निमंत्रित होते थे। दार्शनिक लोग जनता के हितार्थ अथवा धन-धान्य की वृद्धि के लिये भविष्यवाणी प्रत्यक्ष रूप से करते थे। यदि यह भविष्य भाषण तीन बार असत्य प्रमाणित हुआ तो उसे जीवन पर्यन्त फिर ऐसा करने का अधिकार नहीं रहता था। इस कारण कोई अनर्गल बात नहीं कह सकता था। वाणी सत्य होने पर उसे कर से मुक्त कर दिया जाता था। इसका प्रभाव यह होता था कि विद्वान् पुरुषों को बढ़ावा मिलता था। इस प्रथम श्रेणी के विद्वानों का सर्वत्र आदर था और इनका यूनानी इतिहासकारों ने उल्लेख किया है। अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों ने, जो मेगास्थनीज़ के पहले आये, ब्राह्मणों और श्रमणों को आदरणीय कहा है[2]। आनेसिक्राइटस तो इनसे वार्त्तालाप

1—स्ट्राबो १५. १. ३९-४१, ४६-४९। २—स्ट्राबो १५. १. ६१।

करने भेजा गया था[१]। इनमें से कुछ यज्ञ कराते थे और कुछ प्राकृतिक विषयों में अन्वेषण करते थे[२]। निअरकस[३] ने इन ब्राह्मणों को दो श्रेणियों में रक्खा है—प्रथम श्रेणी-वाले सम्राट् के सचिव होकर राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेते थे और द्वितीय श्रेणी के केवल प्राकृतिक अध्ययन करते थे। प्रथम श्रेणी के ब्राह्मणों का राजनैतिक क्षेत्र में भाग लेना बहुत प्राचीन है। वैदिक काल में भी दश राजाओं के युद्ध में सुदास की ओर से वशिष्ठ और संगठित राज्यों के परामर्शदाता विश्वामित्र थे[४]।

स्ट्रावा ने दो श्रेणियों के दार्शनिकों का उल्लेख किया है[५] ब्राह्मण और गरमन जो कदाचित् श्रमण का अपभ्रंश था और जिसके अर्थ योगी है। अशोक के धर्मलेखों में भी ब्राह्मणों और श्रमणों का उल्लेख किया गया है[६]। उसने प्रत्येक व्यक्ति के लिए इनके प्रति सत्कार नियमित-सा कर दिया था[७]। कौटिल्य के मतानुसार[८] एक ब्राह्मण को चाहे वह ऋत्विक्, आचार्य अथवा पुरोहित या श्रोत्रिय हो, राज-कीय कर से मुक्त कर दिया जाता था।

आरियन के सामाजिक विभाग में[९] सोफिस्ट को, जिनकी ऐक्यता मेगास्थनाज़ के दार्शनिकों से की जाती है, आदर-णीय स्थान मिला है। उनसे न तो कोई परिश्रम का काम लिया जाता था और न उनकी उपज का भाग ही। उनका कार्य केवल राष्ट्र की ओर से देवताओं को यज्ञ करके जनता-हितार्थ आहुति देना था। वे ऋतु तथा अन्य

१—स्ट्राबो १५. १. ६२। २—स्ट्राबो १५. १. ६५। ३—स्ट्राबो १५. १. ६६। ४—ऋग्वेद ७. ३. ३२। ५—स्ट्राबो १५.१.५९। ६—स्टानलेख ४। ७—स्टान तथा स्तम्भलेख ७। ८—२. १। ९—अंश ११।

विषयों पर भविष्य वाणी भी करते थे किन्तु व्यक्तिगत पुरुषों के भाग्य का भविष्य नहीं बतलाते थे। यदि उनकी भविष्य-वाणी असत्य प्रमाणित हुई तो वे फिर चुप होजाते थे।

साधारण जनता—मेगास्थनीज़ के इस द्वितीय भाग में अधिकतर साधारण लोग थे जो कदाचित् वैश्यवर्ण के होंगे। अपनी साधारण प्रकृति के कारण वे सेना से अलग थे और कृषि करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे। राष्ट्रीय सकट के समय भी वे निःसंकोच भाव से अपना कार्य किये जाते थे। उपज का चौथाई भाग उन्हें कर के रूप में राष्ट्र को देना पड़ता था। उस प्रकार उनकी ऐक्यता मनु[1] के वैश्यों से की जाती है जिन्होंने वैश्यों के तीन प्रमुख कार्य लिखे हैं—कृषि, व्यापार, वाणिज्य और पशुपालन। कदाचित् मेगास्थनीज़ के इस द्वितीय भाग के पुरुष कृषि करते थे क्योंकि आरियन[2] ने भी उन्हें 'भूमि जोतनेवाला' कहा है और उनकी संख्या सबसे अधिक थी। वे न तो शस्त्र ही धारण कर सकते थे और न उन्हें कोई सैनिक कार्य ही सौंपा जाता था। कर के रूप में वे राजकोष में धन देते थे। युद्ध के समय विपक्षी सैनिक उनके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते थे जिससे अकाल की सम्भावना न हो। इससे यह प्रतीत होता है कि जनता की आर्थिक दशा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन्हीं कारणों से राष्ट्रीय क्षेत्र में उथल-पुथल होते हुए भी कृषक अपने खेत और हल को न त्याग सका। अब भी मेगास्थनीज़ के समय को सहस्रों वर्ष से ऊपर हो चुके हैं, किन्तु कृषक की वही अवस्था है जो उस समय थी।

१—१-९, ३२६। २—अंश ११।

चरवाहे तथा शिकारी—मेगास्थनीज़[1] के मतानुसार, चरवाहे तथा शिकारी समाज के तीसरे अंग थे और केवल वे ही शिकार कर सकते थे तथा पशुओं को रख, बेच अथवा किराये पर दे सकते थे। सम्राट् की ओर से धान्य का एक भाग उन्हें जंगली पशुओं को पकड़ने के उपलक्ष्य में मिलता था। ये पशु खेतों को नष्ट कर देते थे। उनके जीवन के विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि वे खेमे डालकर जगलों में रहते थे। आरियन[2] ने इन्हें चरवाहे लिखा है, जिनमें बकरी पालनेवाले तथा ग्वाले भी सम्मिलित हैं। वे भ्रमणकारी थे और न तो नगरों में रहते थे, न गाँवों में, वरन् उनका पहाड़ियों पर निवास-स्थान था। वे धन के स्थान पर राज्य को पशु भेंट करते थे।

इस वृत्तान्त से यह प्रतीत होता है कि उनमें क्षत्रिय और वैश्यों के अंश सम्मिलित थे। वे इस विचार से क्षत्रिय थे कि उन्हें शस्त्र मिलते थे जो साधारण द्वितीय विभाग के व्यक्ति नहीं रख सकते थे। इस सम्बन्ध में पालतू पशुओं के वे केवल रक्षक ही नहीं थे, वरन् जंगली जन्तुओं से देश की रक्षा भी करते थे। एक प्रकार से वे वैश्य भी थे क्योंकि मनु के कथनानुसार पशुपालन वैश्यों का कार्य था।

यह हो सकता है कि सामाजिक विभाग में दो प्रकार के व्यक्ति हों जो एक दूसरे से भिन्न हों। चरवाहे वैश्यों का कार्य तथा राज्य को पशु भेंट करते हों। इसके विपरीत शिकारियों को जंगली पशुओं से रक्षा के उपलक्ष्य में राज्य की ओर से धान्य मिलता था और उनके कर्त्तव्य के कारण उन्हें क्षत्रिय-श्रेणी में कर लिया गया हो।

१—अंश ३३—स्ट्राबो १५, १, ४१। २—अंश ११।

व्यापारी और मज़दूर—सामाजिक चतुर्थ श्रेणी में वे लोग थे जो व्यापार और श्रम से अपना निर्वाह करते थे। इनमें से कुछ राज्य में कर देते थे और कुछ नियमित काल तक राज्य की सेवा में रहते थे किन्तु शस्त्र तथा जहाज़ बनानेवालों को सरकार की ओर से वेतन मिलता था। आरियन[१] ने उन्हें कुलिक (दस्तकार) तथा फुटकर व्यापारी कहा है। उन्हें अवैतनिक रूप से कुछ सेवा भी करनी पड़ती थी तथा कर भी देना पड़ता था। इसने मेगास्थनीज़ के वृत्तान्त का अनुमोदन करते लिखा है कि युद्ध के लिए शस्त्र बनानेवाले कर से मुक्त थे और उन्हें कुछ वेतन भी मिलता था। इस श्रेणी में जहाज़ बनानेवाले तथा नाव खेनेवाले नाविक भी सम्मिलित थे।

इस प्रकार इस श्रेणी में वैश्य तथा शूद्रवर्ण के व्यक्ति थे। वैश्य व्यापार तथा वाणिज्य करते थे। वे कृषक तथा चरवाहे और भेड़ पालनेवालों से भिन्न थे जो मनु के लिखित वैश्यों के दो अन्य कार्य करते थे। व्यापार और वाणिज्य के लिए राज्य की ओर से भी जहाज़ दिये जाते थे[२] जिससे उस समय के सामुद्रिक व्यापार का पता चलता है। श्रमिक निश्चयतया शूद्र थे जिनका, मनु[३] के मतानुसार, तीनों उच्च वर्णों की सेवा करना ही मुख्य कार्य था।

योद्धा—मेगास्थनीज़[४] के अनुसार योद्धाओं को राज्य की ओर से वेतन मिलता था। उनकी आवश्यकता न होने पर वे अपना समय व्यर्थ में व्यतीत करते थे, किन्तु युद्ध के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे। आरियन[५] ने इन योद्धाओं

१—अंश १२। २—मेगास्थनीज़ अंश ३३। ३—८, ४१० ४१३।
४—अंश ३२—स्ट्राबो १५, १२१। ५—अंश १२।

को गिनती साधारण जनता के पश्चात् रक्खी । उसके मतानुसार उनका कार्य केवल युद्ध करना था। उनको इतना वेतन मिलता था कि वे सुखपूर्वक रह सकें। इनके अतिरिक्त आरियन ने एक और प्रकार के व्यक्तियों का उल्लेख किया है जो युद्ध के समय इन योद्धाओं के खेमों में कार्य तथा घोड़ों की देखभाल करते और रथ हाँकते थे।

योद्धाओं की श्रेणीवाले वास्तव में क्षत्रिय थे, जिनका कार्य मनु[1] के मतानुसार अध्ययन तथा यज्ञ के अतिरिक्त योद्धा जीवन व्यतीत करना था। इनका मुख्य कार्य सम्राट् की ओर से युद्ध करना तथा विपत्तियों और उत्सवों में भाग लेना था। युद्ध के पश्चात् इनका कोई कार्य नहीं रहता था, पर इससे यह न समझना चाहिए कि साम्राज्य की कोई स्थायी सेना न थी वरन् इसके विपरीत प्रजा की रक्षा के लिये इसका पूरा प्रवन्ध था।

रक्षक—मेगास्थनीज[2] के वृत्तान्त के अनुसार छठी श्रेणी के व्यक्तियों का कर्त्तव्य नगर का निरीक्षण कर सम्राट् को पूरा समाचार देना था। इनमें कुछ का क्षेत्र नगरों तथा कुछ का शिविरों का समाचार देना था। इस पद पर केवल विद्वान् और विश्वसनीय ही नियुक्त किये जाते थे। आरियन[3] ने इन्हें संरक्षक कहा है। वे गुप्तचर होते थे और जनता के कार्य-क्रम की सूचना सम्राट् को देते थे। यह सूचना सदैव सत्य रहती थी।

यहाँ यह कहना कठिन है कि इस वृत्ति के लोगों का समाज की किस श्रेणी में स्थान था। इस पद पर नियुक्त होने के लिये केवल इतना आवश्यक था कि वे विश्वसनीय हों और इनमें विद्वत्ता का अभाव न हो। इसलिए इस विभाग

में समाज के सभी वर्णों के व्यक्ति नियुक्त हो सकते थे; क्योंकि विद्वत्ता और विश्वास केवल ब्राह्मणों ही तक सीमित न था। इस श्रेणी को सामाजिक विभाग की अपेक्षा यदि शासन-पद्धति में रक्खा जाय तो उपयुक्त होगा। इनका क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। कदाचित् उनकी समानता अर्थशास्त्र में उल्लिखित प्रदेष्ट्री अथवा गूढ़ पुरुषों से की जा सकती है।

सचिव तथा पञ्च—अन्तिम श्रेणी के व्यक्ति सचिव तथा पञ्च थे। इनका उल्लेख मेगास्थनीज़[1] तथा आरियन[2] ने किया है। ये राज्य के उच्च पद न्याय-शासन तथा शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी विभागों में नियुक्त किये जाते थे। इनकी गणना अल्प थी और अपनी विद्वत्ता तथा न्यायशीलता के कारण प्रान्तों के अध्यक्ष, प्रतिनिधि अध्यक्ष, कोषरक्षक, सेनापति, सामुद्रिक बेड़े के नायक, कृषि के अध्यक्ष इत्यादि पदों पर नियुक्ति के समय इनसे परामर्श लिया जाता था[3]।

प्रथम श्रेणीवालों की भाँति यह भी एक प्रकार से शासन से सम्बन्ध रखते थे। इनकी समानता अमात्य और सचिव से की जा सकती है जो राष्ट्र के उच्च पदाधिकारी थे और जिनको सबसे अधिक वेतन मिलता था। यहाँ यह कहना उपयुक्त होगा कि सामाजिक विभाग के सदस्य केवल अपने ही विभाग में विवाह कर सकते थे; किन्तु, जैसा कि मेगास्थनीज़[1] का कथन है, केवल दार्शनिकों को अपनी विद्वत्ता के कारण इस विषय में स्वतन्त्रता थी। ये नियम केवल रक्त की शुद्धता तथा विद्वत्ता की रक्षा के लिए ही बनाये गये थे। यहाँ पर यह भी कहना उचित होगा कि मेगास्थनीज़ ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों के विभागों को एक में

१–अंश ३३—स्ट्राबो १५. १. ४८। २–अंश १२। ३–यही।
१–अंश ३३—स्ट्राबो १५. १. ४८

त्योहार:—भारतीय सामाजिक जीवन उच्चकोटि का था और बहुत से त्योहार मनाये जाते थे। यूनानी इतिहासकारों ने सार्वजनिक त्योहारों का उल्लेख नहीं किया है। मेगास्थनीज़ ने केवल सम्राट् के केश धोने के दिवस का वर्णन किया है[1]। वर्ष भर में यह एक आनन्द-दिवस था। मल्लयुद्ध तथा पशुओं की लड़ाई और अन्य आनन्द के साधनों से यह दिवस परिपूर्ण था। सबसे अन्त में हाथियों का युद्ध होता था और वे एक दूसरे पर गहरी चोट लगाते थे तथा अन्त में प्रायः दोनों मारे जाते थे। यह त्योहार राज्य की ओर से मनाया जाता था। सार्वजनिक जनतावाले पर्वों के सम्बन्ध में यूनानी इतिहासकारों ने कुछ नहीं कहा है। सम्राट् अशोक ने इन मल्लयुद्धों का निषेध किया, जैसा कि उसके धर्मलेखों से पता चलता है[2]।

वस्त्र और भोजन—भारतीय सामाजिक जीवन तो उच्चकोटि का था ही, किन्तु इसके साथ ही साथ भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कुछ विशेषताएँ पाई जाती थीं जो स्वाभाविक थीं। हेरोडोटस[3] का कहना है कि भारतीय घास के कण के बिने हुए कपड़े पहनते थे। टेसियस ने वस्त्रों का पूर्णतया उल्लेख नहीं किया है तथापि उसने यह लिखा है कि एक कीड़े को खूब पीसकर वे अपने ओढ़ने के वस्त्र, कपड़े इत्यादि रँगते थे[4]। रँगी छाल के बने वस्त्रों का भी उसने उल्लेख किया है[5]। इस विषय में निअरकस का कहना है[6] कि भारतवासी घुटनों तक नीचा कुरता पहनते थे तथा कन्धे के दोनों ओर दुपट्टा और पगड़ा बाँधते थे। धनिक व्यक्ति हाथीदाँत के कनफूल पहनते थे तथा अपनी दाढ़ी को भिन्न-भिन्न रंगों

१—ऐरियन १५. १५। २—चट्टानलेख १। ३—३. ६८। ४—अंश २२। ५—अंश २३। ६—स्ट्राबो १५.१. २०।

से रँगते थे। छाते द्वारा वे धूप से अपनी रक्षा करते थे तथा कामदार सफ़ेद जूते पहनते थे। युद्ध के समय वे लम्बा धनुष, तरकस तथा दोनों ओर धारवाली तलवार बाँधते थे। उनके वस्त्र सूती थे किन्तु इस महीन सूत को यूनानी इतिहासकारों ने ऊन समझा। इसका प्रमाण निअरकस के उस वृत्तान्त से लगता है जिसमें उसने लिखा है कि उनके पलँग की चादर ऊन की बनी थी।

मेगास्थनीज़[1] ने सरल भारतीय जीवन का भिन्नता वेष-भूषण के प्रति अनुराग से दिखाई है। भारतीय व्यक्ति सोने से कढ़े हुए वस्त्र पहनते थे जिनमें बहुमूल्य मणियाँ लगी रहती थीं और ओढ़ने के लिए बेलबूटों से कढ़ा हुआ सुन्दर पाटम्बर था। उनके पीछे सेवक छाता लेकर चलते थे। सुन्दरता से उन्हें विशेष अनुराग था और इनके लिए सब प्रकार के प्रयत्न किये जाते थे।

स्ट्राबो[2] का कहना है कि सजावट के लिए मनुष्य अपना दाढ़ी को भाँति-भाँति के रंगों से रँगते थे। यह प्रथा भारतवासियों के अन्य स्थानों में भी पाई जाती थी। लोग तरह-तरह से दाढ़ा रँगते थे और भिन्न-भिन्न रंगों के कपड़े पहिनते थे। जनता को भूषण से भा अनुराग था किन्तु इसके अतिरिक्त उनका जीवन सरल था।

यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित वस्त्रों तथा वेष की समानता भारहुत में पत्थर पर खुदे हुए चित्रों से की जा सकती है। इन चित्रों में मनुष्य धोती, डुपट्टा तथा पगड़ी पहने दिखाये गये हैं। दाढ़ी की प्रथा कदाचित् ईरानी सभ्यता का प्रभाव रही हो। सैनिक वेष भी भारहुत की भाँति उल्लिखित है, यद्यपि थोड़ी सी भिन्नता भी प्रतीत होती है।

१—अंश २७, स्ट्राबो १५. १. ५४। २—अंश २७ १५. १. ३०।

भारतवासियों का भोजन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग था जैसा कि आज भी है। नदी की तराई में रहनेवालों का भोजन हेरोडोटस ने[1] केवल मछली लिखा है। अन्य स्थानों के व्यक्ति धान तथा जड़ों पर जीवन-निर्वाह करते थे। टेसियस[2] ने पहाड़ पर निर्वासित काइनो केफोलाई नामक एक जाति के भोजन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे बकरी के दूध का पनीर तथा दही खाते थे। सिप्त-खोरा नामक वृक्ष के फल भी खाये जाते थे। अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों ने चावल तथा फल का उल्लेख किया है[3]। इन्हीं इतिहासकारों ने सबसे प्रथम लवण के विषय में लिखा है कि यह सोकाइटस के देश में होता था[4]।

इस विषय में मेगास्थनीज़[5]-उल्लिखित सरल भोजन चावल की खीर थी। सोमरस का पान किसी विशेष अवसर पर ही होता था। उसने यह भी लिखा है कि भोजन का न कोई नियमित समय था और न लोग एक साथ बैठकर खाते थे। आरियन[6] का कथन है कि भारतीय पुरुष अन्न पर जीवन-निर्वाह करते थे किन्तु पहाड़ पर रहनेवाले व्यक्ति मांसभक्षक थे। इन इतिहासकारों द्वारा वर्णित वृत्तान्त से पता चलता है कि भारतवासी सरल भोजन करते थे यद्यपि उनके विचार उच्च थे।

दासत्व—प्राचीन भारत में दासत्व का अभाव था जैसा कि अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के इतिहासकारों तथा मेगास्थनीज़ ने लिखा है[7]। हो सकता है कि उस समय वह

१—३. ६८। २—अंश २२। ३—स्ट्राबो १५, १. १८ ४—स्ट्राबो १५. १. ३०। ५—अंश २७ स्ट्राबो, १५, १. ५३। ६—अंश १७। ७—आरियन अंश १०।

उस रूप में न हो जैसा कि यूनानी समझते थे किन्तु संस्कृतसाहित्य तथा जातकों में इसका कहीं-कहीं उल्लेख है। जातकों में इसका मुख्य कारण—युद्ध का बन्धन, फाँसी के दण्ड को कम करना, ऋण तथा नीचता बताया गया है[1]। मनु ने भी सात तरह के दासों का उल्लेख किया है[2] जैसे, युद्ध में बन्धन किये हुए (ध्वजहृत), भोजन का दास (भक्तदास), पिता के समय का दास (दत्रिण), पिता से मिला हुआ दास (पैतृक) तथा ऋण के कारण दास (दण्डदास) इत्यादि। दास अपना अस्तित्व नहीं बदल सकता था, क्योंकि प्रायः वह जन्मज था।

मृतकसंस्कार—यूनानी इतिहासकारों का इस ओर भी ध्यान गया। अलिकसुन्दर के इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है। अरिस्टोबोलस[3] का कहना है कि मृत्यु के पश्चात् मृतक का शरीर गिद्धों को दे दिया जाता था। यह वृत्तान्त उन जातियों के सम्बन्ध में हो सकता है जो कि भारतीय सुदूर पश्चिमी सीमा पर रहती हों और जिन पर ईरानी सभ्यता का प्रभाव पड़ा हो। मेगास्थनीज़[4] ने टीले तथा समाधियों का भी उल्लेख किया है जो मृतकों के ऊपर बनाई जाती थीं। यह आरियन के वृत्तान्त से भिन्न है क्योंकि उसका कहना है कि मृतक का पुण्य कार्य ही उसकी स्मृति के लिए पर्याप्त था। इन समाधियों का बनाना इसलिए कोई उद्देश्य नहीं रखता था। हेरोडोटस[5] का वृत्तान्त उन जंगली व्यक्तियों से सम्बन्ध रखता है जिनकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होती थी, क्योंकि रोगग्रसित होने पर उनके

१—४. २२०; ६. ५२१। २—८. ४१४, ४१७।
३—स्ट्राबो १५. १. ६२। ४—अरा ७, स्ट्राबो १५. १. ५४।
५—३. १००।

सम्बन्धी उनके शरीर को काटकर खा जाते थे जिससे मरने पर मांस खराब न जाय। अन्तिम यूनानी इतिहासकारा में आर्टिमिडोरस ने मृतक के ऊपर बने हुए टीलों का उल्लेख किया है। यह प्रथा वैदिक काल से चली आती थी जैसा कि नन्दनगढ़ में डा० ब्लाच द्वारा सन् १६१० की खुदाई से प्रमाणित होता है जहाँ इन टीलों में उसने राख और हड्डियाँ पाई। इसका पूरा वृत्तान्त कला के अध्याय में किया जायगा।

यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित भारतीय सामाजिक वृत्तान्त से पता चलता है कि इस उच्चकोटि की सभ्यता पर बाहरी छाप न पड़ सकी। साधारण जीवन बढ़-चढ़कर था जिसका मुख्य कारण सामाजिक विभाग था। इसके कारण आर्थिक जीवन में किस प्रकार उन्नति हुई, यह अगले अध्याय का विषय है।

पाँचवाँ अध्याय

आर्थिक जीवन

यद्यपि भारतवासी राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में बढ़े-चढ़े थे तथापि दैनिक कार्यों में भी उनकी हीनता नहीं पाई जाती थी। उनका आर्थिक जीवन आत्मतुष्टि-वाला न था। आकांक्षा की पूर्ति के लिए उन्हें एक दूसरे का सहारा लेना पड़ता था। इस प्रकार उस समय भी अर्थशास्त्र की विधियाँ—उपज, विभाग, अदल-बदल तथा पूर्ति का पूर्णतया प्रयोग था। इस आर्थिक विधि का हेरोडोटस तथा टेसियस ने उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि आर्थिक विचारों से वे पूर्णतया परिचित न थे, दूसरे उन्होंने इस विषय में छानबीन नहीं की कि किस तरह से आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी। उनके विचार केवल इतने ही तक सीमित थे कि मनुष्य किस प्रकार अपनी इच्छा की पूर्ति करते हैं। इसलिए आर्थिक जीवन की विधियों का उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया है।

आर्थिक विचार—हेरोडोटस की पुस्तक[1] में कृषि अथवा कृषक भूमि का कहीं उल्लेख नहीं है तथापि उसने एक अन्न के कण के विषय में लिखा है कि वह जुआर के दाने के बराबर था और बिना जोते भूमि से उपजता था। इसके अतिरिक्त उस काल के निवासी कच्ची मछली पर

१—३, १०० ।

निर्भर थे। इस प्रकार हेरोडाटस के वृत्तान्त से यह प्रतीत होता है कि उस समय के मनुष्य स्वावलम्बी थे। आर्थिक जीवन में इच्छा, प्रयत्न और पूर्ति पर्यन्त विचार सीमित थे।

टेसियस[1] के आर्थिक वृत्तान्त में माल की अदला-बदली का भी उल्लेख है जिससे मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती थी। उसने काइनोकेफलाओ नामक एक जाति के पुरुषों का उल्लेख किया है जो पहाड़ों पर रहते थे और भारतीयों से वहाँ की उपज, फल-फूल देकर रोटी और आटा बदल कर लेते थे। उनकी उपज व्यक्तिगत थी और सामुदायिक उपज का उन्हें विचार न था।

अलिकसुन्दर (सिकन्दर) के यूनानी इतिहासकारों ने परिपूर्ण आर्थिक जीवन का उल्लेख किया है जिसमें उपज, पूर्ति, बटाई तथा धन के अदल-बदल का भी वर्णन है। इससे यह पता चलता है कि भारतवर्ष पहुँचने पर उन्हें यहाँ के आर्थिक जीवन की सच्ची झलक दिखाई पड़ी। निअरकस[2] ने संगठित उद्योग का उल्लेख किया है जिससे बटाई की विधि का पता चलता है। उसने लिखा है कि सबके एकत्रित होने पर प्रतिवर्ष प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुसार अन्न ले लेता था। किसी को भाग पाने के लिए यह अनिवार्य था कि उसने उपज के लिए उद्योग अवश्य किया हो। इस वृत्तान्त से आर्थिक जीवन की उच्चकोटि की स्थिति का पता चलता है। उपज में भूमि, श्रम और मूलधन के अतिरिक्त संगठन और तत्परता का पूर्णतया उपयोग था। सामुदायिक उद्योग के कारण

१—अंश १२। २—स्ट्राबो १५. १. ६६।

उपज में हरएक का भाग रहता था और अदल-ब
कारण सभी लोग अधिकतर आवश्यकताओं की पूर्ति कर
सकते थे।

मेगास्थनीज़ ने सबसे पहले धन और उधार का उल्लेख किया है। आर्थिक जीवन में धन तथा ऋण का बहुत प्रयोग होता था। इस कारण भारतवासी इस आर्थिक विचार से अपरिचित न थे। उच्चकोटि के आर्थिक जीवन में इच्छाओं की पूर्ति के लिए उपज, विभाग अदल-बदल में धन तथा उधार का प्रयोग होता था। उस समय में श्रेणियों द्वारा मुद्राएँ भी चलती थीं जो छेद अथवा ठप्पेदार थीं।

पीछेवाले इतिहासकारों ने आर्थिक जीवन का कोई विशेष उल्लेख नहीं किया। यह जीवन वास्तव में बढ़ा-चढ़ा था और इसका मुख्य कारण राज्य की स्थिरता तथा उच्च राजनैतिक और सामाजिक विचार थे। यह परिस्थिति इन्हीं कारणों से आगे न बढ़ सकी क्योंकि एक असभ्य समाज में आर्थिक विचारों का होना अस्वाभाविक है।

कृषि—आर्थिक जीवन बहुत से धन्धों से परिपूर्ण था जिनमें से एक कृषि भी था। वर्तमान काल की भाँति उस समय में भी कृषक इसी प्रकार से क्षेत्र जोतकर अन्न की उपज करता था, यद्यपि राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मची रहती थी। यूनानी इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है। हेरोडोटस[1] का कहना है कि बिना क्षेत्र जोते हुए एक प्रकार जुआर का इतना बड़ा अन्न भूमि से उपजता था।

टेसियस ने कृषि अथवा धान्य का उल्लेख नहीं किया है। वरन् कैनोकेफलाई नामक एक जाति के विषय में लिखा[2]

१—३. १०० । २—अंश २२ ।

है कि वे अपने यहाँ के फल-फूल भारतवासियों की रोटी तथा धान से बदल लेते थे। इससे यह पता चलता है कि उस समय फ़सलें भली भाँति होती थीं। अलिकसुन्दर के इतिहासकारों ने इस विषय में पूर्णतया वृत्तान्त लिखा है। उनका कहना है[1] कि चावल की डाली चार फ़ीट ऊँची होती थी और उसमें बहुत-सी बालियाँ होती थीं जिससे बहुत धान पैदा होता था। ओनेसिक्राइटस[2] ने विस्मोरन नामक एक गेहूँ से छोटे अन्न के दाने का उल्लेख किया है। यह कदाचित् जौ अथवा सावाँ था जो चावल की भाँति कूटा जाता था। भूजने से पीछे लोग इसे खाते थे। कृषि में संयुक्त परिश्रम से काम लिया जाता था।

मेगास्थनीज़ ने अपने वृत्तान्त[3] में कृषि केवल एक जाति के व्यक्तियों में सीमित रक्खी जो चरवाहे कहलाते थे। वीर प्रकृति न होने के कारण वे सेना से बाहर थे। राजनैतिक क्षेत्र में उथल-पुथल होते हुए भी वे शान्ति से भूमि जोतते थे। सम्पूर्ण कृषिभूमि राज्य की थी। हर एक को उपज का चौथाई भाग राज-कर के रूप में देना पड़ता था। मेगास्थनीज़[4] के अनुसार चावल की लस्सी ही भारतवासियों का मुख्य भोजन था, इस कारण यही उस समय प्राची अथवा पूर्वीय भागों में उपजता था। उसका कहना है[5] कि प्रतिवर्ष फल और अन्न की दो फ़सलें बोई जाती थीं। इसका समर्थन एराटास्थोनीज़[6] ने किया है जिसने शरद् और वर्षा के साथ-ही-साथ दो उपजों का भी उल्लेख किया है[7]।

आरियन[8] ने मेगास्थनीज़ की भाँति कृषि को केवल एक

१—स्ट्रावो १५. १. १८। २—यही। ३—अश २३. स्ट्रावो १५. १. ४०। ४—अश २२. स्ट्रावो १५. १. ५५। ५—स्ट्रावो १५. १. २०। ६—यही। ७—१५. १ १३। ८—अश ११।

जाति तक सीमित रक्खा है जो भूमि के जोतनेवाले कहलाते थे और जिनसे कोई सैनिक कार्य नहीं लिया जाता था। घरेलू लड़ाइयों में सैनिक लोग उपज पर अत्याचार नहीं करते थे, क्योंकि उसके नष्ट होने से देश में अकाल और महामारी फैल सकती थी। कृषक इस प्रकार निर्भय होकर अपना कार्य करता था, यद्यपि युद्ध निकट ही हो रहा हो। आरियन ने फ़सलों का उल्लेख नहीं किया है। उसने मेगास्थनीज़ का अनुकरण किया, इसलिए उसके वृत्तान्त में मौलिकता का अभाव है।

भूमि की उपज और वनस्पतियाँ—भारतवर्ष की भूमि उपजाऊ होने के कारण यहाँ भाँति-भाँति के फल-फूल तथा वृक्ष थे जिनका यूनानी इतिहासकारों ने वर्णन किया है। हेरोडोटस[1] ने नरकुल के वृक्ष का उल्लेख किया है जो अत्यन्त उपयोगी था। टेसियस ने भूमि की उपज का कोई वृत्तान्त नहीं लिखा है यद्यपि उसका कहना है[2] कि सिन्धु नदी की निकटवर्त्ती भूमि उसी नदी से सींची जाती था; क्योंकि वहाँ वर्षा बहुत कम होती थी। इससे टेसियस का उद्देश दक्षिणी सिन्धुप्रदेश से था जो एक और नदी मेहरान द्वारा सींचा जाता था। यह नदा चौदहवीं सदी तक थी[3]। टेसियस[4] ने सबसे पहले दो प्रकार के नरकुल के वृक्षों का उल्लेख किया है। उसने करपियन नामक एक वृक्ष के विषय में लिखा है[5] जो डाक्टर काल्डवेल[6] के मतानुसार तामिल करप्प (संस्कृत 'कर्पूर' हिन्दी कपूर था)। टेसियस ने

१-३. ९८। २-अंश १६। ३-मुकर्जी, हिन्दूसंस्कृति पृष्ठ १३। ४-अंश ६। ५-अंश २८। ६-द्राविड़-भाषा का व्याकरण, पृष्ठ १०५।

ताड़ के वृक्षों का उल्लेख किया है जिसके फल यूनानी ताड़ के फलों से वड़े थे[1]।

अलिकसुन्दर के इतिहासकारों का कथन है[2] कि उपजाऊ भूमि का कारण केवल वर्षा न थी वरन् पहाड़ों से विकली नदियों द्वारा सिंचाई से भी भूमि उपजाऊ होती थी। इसा कारण ग्रीष्म और शरद् की उपज होती थी। उन्होंने वहुत से वृक्षों का भी उल्लेख किया है। ओनेसिक्राइटस[3] का कहना है कि कुछ वृक्ष इतने वड़े थे कि उनकी शाखाएँ भूमि से स्पर्श होकर एक प्रकार का तम्वू वना देती थीं। वे इतनी वड़ी थीं कि उनमें ५० अश्वारोही शरण ले सकते थे। निअरकस ने एक नरकुल के वृक्ष का उल्लेख किया है जिसमें विना मधुमक्खियों के शहद निकलता था[4]। कदाचित् यह ऊख थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने वहुत से चिकित्सक वृक्ष तथा जड़ी-वूटियों का भी वृत्तान्त दिया है[5]।

मेगास्थनीज़ ने उपजाऊ भूमि के विषय में लिखा है कि यहाँ प्रतिवर्ष दो फ़सलें फल और अन्न की होती थीं। इसका समर्थन एराटास्थोनीज़ ने किया है। मेगास्थनीज़ ने वृक्षों के फल तथा जड़ों के विषय में लिखा है कि खाने में वे अत्यन्त स्वादिष्ट और मीठी थीं[6]। इसके अतिरिक्त वनस्पति के विषय में उसने कुछ नहीं कहा है। इस सम्वन्ध में स्ट्रावो के वृत्तान्त में भी मौलिकता का अभाव है, किन्तु उसने उपजाऊ भूमि का उल्लेख किया है। उसका कहना[7] है कि पहाड़ी स्थान तथा उत्तरी देश अधिक उर्वर तथा निवास योग्य थे, किन्तु दक्षिणी भाग में प्रचण्ड गर्मी और वर्षा के

१—स्ट्रावो १५. १ १६। २—स्ट्रावो १५. १. २१। ३—स्ट्रावो १५. १. २०। ४—स्ट्रावो १५. १ २१। ५—अंश ११; स्ट्रावो १५. १. २०। ६—स्ट्रावो १५. १. २०। ७—स्ट्रावो १५. १२६।

अभाव से केवल जंगली पशु रहते थे। झेलम और चिनाव के बीच पोरस का देश बहुत उपजाऊ था[1] और उसमें कोई ५००० नगर थे तथा उसके निकट देवदार और जहाज़ बनानेवाली अन्य लकड़ियों का जंगल था[2]। यह दारु झेलम नदी से लाई जाती थी। स्ट्राबो ने खजूरों का भी उल्लेख किया है।

प्लिनी ने वृक्षों का बृहत् वृत्तान्त लिखा है[3]। आबनूस के पेड़ का उसने सबसे पहले उल्लेख किया है जो हेरोडोटस[4] के मतानुसार एथिओपिया में होता था। इस पादप में अच्छे कम होते थे किन्तु अच्छे तरुओं में गाँठ नहीं होती थी और वे काले तथा चमकीले होते थे। अंजीर के विटप में फल होते थे और जैसा कि अलिकसुन्दर के इतिहासकारों ने लिखा है उसकी शाखाएँ इतनी बड़ी थीं कि उनकी छाया में श्रान्त पथिक विश्राम करते थे। इस वृक्ष की पत्तियाँ ढाल के आकार सी थीं और उसका फल सूर्य की गर्मी से पकता था। असिक्नि नदी के किनारे ये वृक्ष बहुत पाये जाते थे। पाल नामक एक और वृक्ष का भी उल्लेख है जो ऋषियों को बहुत प्रिय था। इसमें बहुत मिठास होती थी। अन्त में प्लिनी ने जैतून, मिर्च और अंगूरी मदिरा के विषय में भी लिखा है।

आरियन ने न तो वृक्षों का उल्लेख किया है और न जड़ी-बूटियों का, जो सर्प के काटने पर प्रयोग में आती थीं। आलियन[5] ने सम्राट् के प्रासाद का वर्णन करते हुए जैतून के वृक्ष का उल्लेख किया है।

यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित वनस्पति का

१—स्ट्राबो १५. १२६। २—स्ट्राबो १५. २. ७। ३—१२. (८—१३)। ४—३. ६७। ५—१२. १८।

यह वृत्तान्त केवल स्थूल और साधारण है। इसका कारण कदाचित् इन इतिहासकारों का वनस्पतिशास्त्र से अप्रेम था। यह कहाँ तक सच है, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

व्यापार—यद्यपि अधिकतर भारतवासी कृषि करते थे तथापि इससे यह न समझना चाहिए कि व्यापार की ओर उनका ध्यान न था। वैदिक काल[1] से ही व्यवसाय और व्यापार में उन्नति होती आ रही थी, यहाँ तक कि हेरोडोटस तथा टेसियस ने जिनके वृत्तान्त कल्पनाओं से भरे हुए हैं, उनका उल्लेख किया है। हेरोडोटस[2] ने नदी के मुहाने पर निवासित उन पुरुषों के विषय में लिखा है कि वे मछली मारकर निर्वाह करते थे। वे नरकुल की बनी हुई नावों पर नदी में जाते थे। इस प्रकार यद्यपि वे स्वावलम्बी थे तथापि व्यवसाय में लगे थे। टेसियस[3] का कहना है कि जंगली पशुओं के आखेट के लिए भारतवासी तलवार बनाते थे। इसके अतिरिक्त धनुष और भालों को बनाकर वे और वस्तुओं से अदल-बदल भी कर लेते थे। इस वृत्तान्त से पता चलता है कि व्यवसायी उद्योगों में उन्होंने उन्नति की थी।

अलिकसुन्दर के इतिहासकारों ने उन्नतिशील व्यवसायों का उल्लेख किया है। नाव बनाने का अच्छा धन्धा था और अलिकसुन्दर की वापसी यात्रा के लिए एक बड़ा बेड़ा तैयार किया गया था[4]। आरियन[5] ने भी जहाज़ों की मरम्मत के स्थान तथा क्षत्रियों द्वारा दिये हुए ३० जहाज़ों के एक बेड़े का उल्लेख किया है, जो उन्हीं लोगों ने बनवाये थे। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय में नावों और जहाज़ों के

१—यजुर्वेद वाजसनेयीसंहिता ३०, ७। २—७, ६८। ३—अंश २२। ४—स्ट्राबो १५, २, ११। ५—६, १५।

बनाने का यहाँ अच्छा व्यवसाय था। निअरकस[1] ने रुई का उल्लेख किया है किन्तु उसने यह भूल की कि ऊन और रुई की एकता कर दी। यूनानी इसे चटाई तथा घोड़ों की ज़ीनों में भरते थे। उस समय की धोती, कुर्ते तथा दुपट्टे इस बात का प्रमाण हैं कि रुई का अच्छा व्यवसाय था। भारत-वासी छातों का भी प्रयोग करते थे और केवल अपनी दाढ़ी ही नहीं वरन् कुर्ते भी रँगते थे[2]। इससे यह पता चलता है कि उस समय रजक तथा छाता बनानेवाले भी थे। ये दोनों व्यवसाय ई० पू० छठी शताब्दी में भी भारतवर्ष में प्रचलित थे[3]।

मेगास्थनीज़[4] ने सैनिक सामान तथा जहाज़ बनानेवालों का उल्लेख किया है। ये चतुर्थ श्रेणी में थे और इनको मज़-दूरी के अतिरिक्त सरकार की ओर से वेतन भी मिलता था। इनके अतिरिक्त बहुत से घरेलू व्यवसाय भी होंगे किन्तु उनका मेगास्थनीज़ ने उल्लेख नहीं किया है।

स्ट्राबो[5] का कहना है कि वृक्ष के तनों को काटकर गाड़ियों के पहिये बनाये जाते थे। इससे लकड़ी के व्यवसाय का पता चलता है, जो प्राचीन था। पूरा पाटलिपुत्र—द्वार और शिखरों सहित लकड़ी का बना था। इससे प्रतीत होता है कि लकड़ी के व्यवसाय की उन्नति मेगास्थनीज़ के समय में आरम्भ हो गई थी। प्लिनी[6] ने भी ताम्रपर्णि का वर्णन करते हुए जहाज़ों के निर्माण का उल्लेख किया है। जलयानों के दोनों ओर अग्र भाग थे जिससे वे छोटी नदियों में जाकर मुड़ सकें।

१—स्ट्राबो १५. १. २०। २—आरियन अंश ७। ३—रायस डेविड्स—बौद्धभारत, अध्याय ६। ४—अंश ३२. स्ट्राबो १५. १. ४६। ५—स्ट्राबो १५. १. २०। ६—६. २२।

इस वृत्तान्त से पता चलता है कि उस समय की व्यावसायिक अवस्था अच्छी थी । शिल्पकला में भारतीय अत्यन्त दक्ष थे और किसी वस्तु का अनुकरण कर सकते थे जो उन्हें दी जाती थी। यूनानियों को स्पंज (सोखता) करते देख उन्होंने उससे कहीं अच्छा स्पज बना दिया। इससे उनकी बुद्धि कुशलता तथा दक्षता का पता चलता है। इन इतिहासकारों ने संगठित उपज का उल्लेख नहीं किया है। हो सकता है कि राष्ट्र के अधीन व्यवसायों में संगठित उपज हो किन्तु घरेलू व्यवसायों की श्रेणियों में प्रजातन्त्र अंश पाया जाता था जिसका उल्लेख इन यूनानी इतिहासकारों ने नहीं किया है वरन् सस्कृतसाहित्य तथा लेखों से इन श्रेणियों का पता चलता है[1]।

खनिज पदार्थ—इस विषय में यूनानी इतिहासकारों का दृष्टिकोण सीमित न था। उन्होंने बहुत से खनिज पदार्थों तथा मोतियों का उल्लेख किया है। हेरोडोटस[2] ने भारतीय स्वर्ण का वर्णन किया है। उसका वृत्तान्त अत्यन्त ही मनोरंजक है। उसका कहना है कि कस्पैपिरस और पैकटिया देश के निकट बैकट्रिया-निवासियों के समान कुछ भारतवासी रहते थे जो अत्यन्त लड़ाकू थे और स्वर्ण की खोज में भेजे जाते थे, जो ईरानी सम्राट् को भेंट में दिया जाता था। उनका देश मरुस्थल के निकट था जहाँ सोना मिलता था। उस मरुस्थल में कुत्तों से छोटी और लोमड़ियों से बड़ी चींटियाँ रहती थीं। उनमें से कुछ पकड़कर ईरानी सम्राट् को भी दी गई। यूनानी चींटियों की भाँति ये भी बालू के नीचे रहती थीं और उन्हीं के समान उनका आकार भी था। बालू

१—मुकर्जी, प्राचीन भारत में स्थानीय शासन, पृ० ३६।
२—३. १०२।

में सोना मिला रहता था। भारतीय ऊँटों पर चढ़कर जाते थे। हरएक के साथ तीन ऊँट रहते थे। दो नर इधर-उधर और मादा बीच में। अन्तिम पुरुष उस ऊँटनी पर बैठता था जिसके हाल ही में बच्चा हुआ हो क्योंकि ऊँटनी दौड़ने में घोड़े से कम नहीं होती थी और अधिक बोझ ले जा सकता थी। भारतवासी वहाँ पर पहुँचकर जल्दी से बोरों को बालू से भरकर भागते थे। ईरानियों का कहना था कि सूँघते ही चीटियाँ उनके पीछे दौड़ती थीं और केवल वही बच पाते थे जो प्रस्थान के समय बहुत आगे बढ़ गये हों, जब कि चीटियाँ इकट्ठा हो रही हों।

निअरकस[1] ने भी चीटियों द्वारा खोदे हुए सोने का उल्लेख किया है जो लोमड़ी की इतनी बड़ी थीं और जिनकी खाल यूनानी डेरों में ले जाई गई। मेगास्थनीज़[2] ने भी इन चीटियों का कथन किया है। उसने लिखा है कि पूर्वीय कोने के एक ३००० स्टेडिया चौड़े पठार पर दरदार देश में भारत की एक जाति रहती थी। इसके नीचे सोने की खानें थीं जिन पर चीटियाँ रहती थीं। जंगली लोमड़ियों से किसी तरह ये छोटी नहीं थीं। ये बहुत तीव्र चाल चलनेवाली थीं और अनुसरण (शिकार) के आधार पर निर्वाह करती थीं। इन भारतीय चीटियों के सींग ईरीथीरे में हरक्यूलीज़ के मन्दिर में लगे थे[3]। मिश्री भेड़ियों के आकार की इन चीटिया का रंग बिल्ली के रंग की तरह था। जाड़े में जो सोना ये चीटियाँ खोदती थीं वह भारतवासी उस समय चुरा लाते थे जब प्रचण्ड गर्मी के कारण ये चीटियाँ भूमि के नीचे चली जाती थीं। इनकी उपस्थिति को सूंघते ही वे बाहर निकल आती थीं और यद्यपि

१—आरियन अंश १५। २—अंश ३९, स्ट्राबो १५, १, ४४। ३—११, ३१।

भारतीय तीव्र चालवाले ऊँटों पर सवार रहते थे पर कभी-कभी उनको पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालती थीं। उनकी इतनी तीव्र चाल थी तथा सोने से इतना प्रेम था।

यह स्वर्ण निकालनेवाली चीटियों का समकरण बहुत काल तक न हो सका। लोगों का विचार था कि या तो ये कोई विचित्र भाँति की चीटियाँ थीं अथवा कोई पशु थे, जिन्हें भूल से चीटियाँ कहा गया था। महाभारत[1] से उद्धृत कर प्रो० विलसन ने कहा है कि 'पैप्पिलिक' के अर्थ 'सोना निकालने-वाली' नहीं वरन् 'स्वर्ण उपहार होना' चाहिए। इससे यह प्रतीत होता है कि सोना निकालनेवाली कोई चीटियाँ न थीं वरन् एक जंगली जाति के पुरुष थे जो अपने जंगली पशुओं के साथ सोना निकालते थे। यह पुरुष स्वयं खोदकर सोना बाहर निकालते थे किन्तु उसकी रक्षा उनके जंगली पशु करते थे। अत्यन्त गर्मी के कारण कुछ पशु मर गये होंगे और भारतीय उन्हीं को अपने साथ उठा लाये होंगे। इससे यह अनुमान किया गया होगा कि सोने को यही पशु खोदते होंगे। उन पशुओं की खाल और सींगों को उन्होंने यूनानी और रोमन सम्राटों के यहाँ भेजा जिससे अनुमान किया जा सके कि कितनी कठिनता से उन्हें सोना प्राप्त होता था।

ये सोना निकालनेवाले कदाचित् तिब्बत की जंगली जाति के पुरुष थे जिनको आलियन[2] ने ग्रिफिन कहा है। उसके वृत्तान्त का उत्तरकालीन इतिहासकारों ने समर्थन किया है। फिलास्ट्रेटस[3] ने इन्हें सोना निकालनेवाले ग्रिफिन कहा है। ये अत्यन्त ही क्रूर प्रकृति के थे और काश्मीर के

१—२. १८४८। २—६. २२। ३—मैक्रान्डिल, यूनानी साहित्य में भारत-वर्णन, पृष्ठ १६२।

उत्तर में रहते थे। अपने साथी याक के साथ इनका निवास था। उसकी खाल को ये ओढ़ते थे और उसके सींगों का सोना निकालने में प्रयोग करते थे।

इससे यह पता चलता है कि हेरोडोटस, निअरकस, मेगास्थनीज़ तथा प्लिनी के वृत्तान्तों में सत्य का अंश अवश्य है और यह निरर्थक नहीं है। इनको पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि यह विवेकहीन है किन्तु इसमें इतिहासकारों का विशेष दोष नहीं है। उन्होंने तत्कालीन प्रचलित विचारों का केवल उल्लेख किया। निअरकस का वृत्तान्त कि उसने स्वयं इन पशुओं की खाल और सींग देखे, सत्य प्रतीत होता है। मेगास्थनीज़ के दरदाई-प्रदेश के पुरुष यही तिब्बत-निवासी थे। प्लिनी का वृत्तान्त कि उसने इन सींगों को हरक्यूलीज़ के मन्दिर में लगा देखा, साधारण बात है। हेरोडोटस[1] ने स्वर्ण की राख का उल्लेख किया और टेसियस[2] ने सोना साफ़ करने का विधि लिखी। ठोस सोना बनाने की विधि के विषय में उसने लिखा है कि कच्ची धातु को द्रव बनाकर, तब ठोस बनाते थे। प्रतिवर्ष एक बड़े सोते में द्रव भरा जाता था और उसमें से वह मिट्टी के घड़ों से खींचा जाता था। धातु के बर्त्तनों का प्रयोग इसलिए नहीं किया जाता था कि कहीं उसमें सोना चिपक न जाय। द्रव को इस प्रकार साफ़ करके ठोस सोना बनता था।

चाँदी—टेसियस[3] ने सबसे पहले चाँदी का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि यहाँ चाँदी की खानें थीं पर बैक्टिया की इतनी गहरी न थीं। यह सच है, क्योंकि भारत में सोने की अपेक्षा चाँदी की खानें कम हैं। उस समय

१—३, ६८। २—अंश ४। ३—अंश १२।

ईरानी सम्राटों ने सोने तथा चाँदी के सिक्के डेरिक और सिगलोई चलाये जिनका सम्बन्ध १ : ८ का था[1]। यह साधारण से कम था जो १ : १३.३ है। इसके अतिरिक्त स्ट्राबो[2] ने भी चाँदी का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि शौभूति के राज्य में सोने तथा चाँदी की खानें थीं।

लोहा—टेसियस[3] ने लोहे का भी उल्लेख किया है जिसकी तलवारें बनती थीं। इनका प्रयोग बिजली से बचाने के लिए भी किया जाता था। इस प्रकार की दो लोहे का तलवारें उसे सम्राट् और राजमाता ने दीं। यह कहा जाता है कि इसमें चुम्बक लगा रहता था और उससे बिजली का प्रभाव हटाया जा सकता था। भौतिकशास्त्र का चमत्कार यदि उस समय में प्रतीत होने लगा तो यह आश्चर्यजनक बात है। उत्तरकाल में लोहे का प्रयोग, सैनिक सामान—तलवार, तीर, भाले इत्यादि के बनाने में होता था।

तांबा—ताँबे का उल्लेख सबसे पहले स्ट्राबो[4] ने किया है। सोने के बर्त्तनों के अतिरिक्त बड़े-बड़े बर्त्तन, मेज़ें, कुर्सियाँ तथा पीने के प्याले इत्यादि ताँबे के बनाये जाते थे। फिलास्ट्रेटस[5] का कहना है कि अलिकसुन्दर और पोरस की वीरता के दृश्य ताँबे की चद्दरों पर अंकित थे।

रत्न—रत्नों का बृहत् वृत्तान्त प्लिनी[6] की पुस्तक में मिलता है। उसने छै प्रकार के हीरों का वर्णन किया है। हीरा सोने के साथ नहीं दबा रहता है। बिल्लौर की तरह इसमें किरण-भेद्यता भी थी तथा इसके छै कोण थे[7]। फ़ीरोज़ा सबसे अच्छा समझा जाता था और सोने की अपेक्षा अधिकतर

१—कैम्ब्रिज—भारतवर्ष का इतिहास—प्रथम भाग पृष्ठ ३४३। २—१५. १. ३०। ३—अंश १२। ४—१५. १. ६१। ५—मैक्रान्डिल, यूनानी साहित्य में भारत-वर्णन, पृष्ठ १२२। ६—पुस्तक ३७। ७—पुस्तक ४ (१५)।

ग इसा को पहनते थे। यह पन्ने की आकार का था[1]।
धिया फीरोज़े से भिन्न था किन्तु मूल्य में पन्ने से कम
[2]। शारदा एक और सफ़ेद रत्न था[3] और इसमें किरण-
द्यता अथवा ट्रान्सपरेन्सी था। रत्नों में सबसे श्रेष्ठ
ानिक था[4]। इसका रंग अग्नि के समान लाल था किन्तु
ारतीय मानिकों में चमक न थी और वे मैले थे। इसके
तिरिक्त प्लिनी ने और बहुत से रत्नों का वर्णन किया है
ो अपनी उज्वलता के कारण चकाचौंध कर देते थे। यहाँ
र उनका उल्लेख करना अनावश्यक है। मेगास्थनीज़[5] ने
बसे पहले मोतियों का वर्णन किया है जिनका सम्बन्ध
सने हेराक्लीज़ की पुत्री पानडेय से दिखाया है जो दक्षिण
श की रानी हुई। मोती समुद्र में पाये जाते थे और
स्त्रियों के शरीरों को सुशोभित करते थे।

पशुपालन—जिन भारतवासियों को कोई अन्य कार्य न
ा, वे पशुओं को पालते थे। मेगास्थनीज[6] ने उन्हें अलग
विभाग में रक्खा है। आश्वक देश से अलिकसुन्दर ने
२३००० बैल यूनान भेजे। तक्षशिला से उसे ३००० बैल
और १०,००० भेड़ें और शौभूति से शिकारी कुत्ते तथा
क्षुद्रक से पालतू शेर और चीते मिले। घोड़ों और हाथियों
का भी प्रयोग किया जाता था[7]। इससे प्रतीत होता है कि
जिन मनुष्यों की युद्ध से अरुचि थी, उनमें से कुछ पशुपालन
करके अपना निर्वाह करते थे।

यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित आर्थिक जीवन उच्च
कोटि का था। लोगों का व्यवसाय केवल कृषि तक सीमित

१–पृ ४ (२०)। २–पृ. ४ (२१)। ३–पृ. ६ (२३)। ४–पृ.
७(२४)। ५–श ंश lb प्लिनी ६. ५५। ६–स्ट्राबो १५, १.
४०। ७ मुकर्जी—हिन्दूसस्कृति पृष्ठ ३११।

न था वरन् अन्य व्यवसाय, पशुपालन तथा वाणिज्य द्वारा मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह करते थे। इस उच्च श्रेणी की आर्थिक अवस्था का पता इस बात से लगता है कि लोग केवल अपनी ही उपज से सन्तुष्ट न थे वरन् कांक्षा की पूर्ति के लिए उन्हें दूसरों पर भी अवलम्बित रहना पड़ता था। यह सिक्के तथा विनिमय द्वारा होता था। यद्यपि परिश्रम की अस्थिरता का किसी ने वर्णन नहीं किया है तथापि प्राचीन साहित्य के आधार पर यह कहना उपयुक्त होगा कि प्रत्येक पुरुष को अपने व्यवसाय बदलने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इस प्रकार यह पूर्णतया विदित है कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित उस समय का आर्थिक जीवन श्रेष्ठ था।

छठा अध्याय

धर्म, दर्शन तथा अध्यापन

सादा जीवन और उच्च विचार पर आधारित भारतीय संस्कृति और सभ्यता यद्यपि मिश्री और असीरी सभ्यता के अनात्मवाद सिद्धान्तों से पृथक् रही किन्तु मानसिक और धार्मिक क्षेत्रों में भारतवासी बहुत बढ़े-चढ़े थे। जीवन सादा था पर विचार उच्च थे। इस प्रकार की धार्मिक और मानसिक बुद्धि उच्च कोटि पर पहुँच चुकी थी जैसा कि ऋग्वैदिक काल से पता चलता है। गायत्रीमंत्र ही में मानसिक विचारों की श्रेष्ठता प्रकट होती है और इसी से आज भी साधन का मार्ग झलकता है।

इस पौष्टिक बुद्धि से मूढ़विश्वास का नहीं वरन् विद्वत्ता तथा सारगर्भित सम्भाषण का प्रकाश हुआ जो देखने में सादा और सहज प्रतीत हो पर समझने में कठिन था। वास्तविक तत्त्वों को समझने के लिए इन गूढ़ विषयों पर वाद विवाद होना स्वाभाविक था। मेगास्थनीज़[1] का कहना है कि ब्राह्मण और सोफिस्ट (साधु) मृत्यु तथा पुनर्जन्म इत्यादि जटिल विषयों पर वाद-विवाद करते थे। उनका कथन था कि यह जीवन वह काल है जब बच्चा माँ के गर्भ में रहता है और मृत्यु के पश्चात् वह अत्यन्त सुखी जीवन में प्रवेश करता है। मेगास्थनीज़ के इस वृत्तान्त की

1—खंड ४१—स्ट्राबो १५, १, ५८-६० ।

तुलना गूढ़ जगत् के सिद्धान्त से की जा सकती है जिसका ध्येय है कि वास्तव में कोई संसार नहीं है किन्तु ब्रह्म है। यह संसार एक मृगतृष्णा है जो पहुँचने के उद्योग के साथ ही साथ लोप हो जाती है। इस प्रकार की बहुत सी उपमाएँ वेदान्तियों ने दी हैं किन्तु सबसे उत्तम शंकर की है। उन्होंने इसे एक बड़ा स्वप्न कहा है जिसकी जागृत अवस्था मृत्यु के पश्चात् ही होती है।

इस उच्च दार्शनिक तथा धार्मिक विषय के अतिरिक्त, जिन पर आगे चलकर विचार किया जायगा, हमको साधारण जनसमुदाय के धार्मिक संस्कारों पर भी विचार करना होगा जो आज भी प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य हैं। साधारण जीवन होते हुए भी धार्मिक क्षेत्र में बहुत से देवी-देवताओं की पूजा करना आवश्यक सा था। यूनानी इतिहासकारों[1] ने इनमें से कुछ प्रमुख देवताओं जैसे डाय-ओनिसस (शिव) और हेराक्लीज़ (कृष्ण) का वर्णन किया है। यद्यपि मेगास्थनीज़ का वृत्तान्त मिथ्या और हास्यपूर्ण प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में यह वही वर्णन है जो संस्कृतसाहित्य में किया गया है। उसने इन देवताओं को यूनानी रंग में रँगा। डायओनिसस अथवा शिव का वृत्तान्त कि उनके पीछे एक सेना रहती थी जो मदिरा पिये हुए मस्त ढोल और डमरू के साथ चलती थी, शिवजी के गणों से सम्बंधित है। ऋग्वेद[2] में उनकी रुद्र के नाम से स्तुति की गई है। ब्रह्मा ने संसार को रचा, विष्णु उसका पालन करते हैं और शिवजी को उसे नष्ट करने का भार दिया गया है।

आरियन के मतानुसार[3] हेराक्लीज़ को शूरसेन नामक

१—अंश ४६. स्ट्राबो १५. १. ६८। २—१. १४३. २। ३—अंश ८।

एक स्वतन्त्र जाति पूजती थी और उनके दो मुख्य नगर थे-मिथोरा (मथुरा) और क्लेस्वोरा (कृष्णपुर-वृन्दावन) और एक नदी जो वेनेस (जमुना)[1] उनके देश से होकर बहती थी। हेराक्लीज़ का यह वृत्तान्त कृष्णजी से समानता रखता है जिनकी जन्मभूमि मथुरा थी और श्रीमद्भागवत के अनुसार उनका सम्बन्ध मथुरा और वृन्दावन से था।

इसके अतिरिक्त भारतवासी जेनसामब्रियस, गंगा तथा कुछ और देवताओं को पूजते थे[1]। जेनसामब्रियस की समानता इन्द्र से की जाती है क्योंकि वृत्तान्त में लिखा है कि वह देवता वर्षा करता था जिसके बिना शस्य नष्ट हो जाती थी और पशु-पक्षी इत्यादि मर जाते थे। गंगा का वृत्तान्त भी ठीक है क्योंकि आज भी यह पूजनीय है।

इसके अतिरिक्त किसी और देवता का इन इतिहासकारों ने नहीं उल्लेख किया है। इनके इस सूक्ष्म वृत्तान्त को भी लोग असत्य और मिथ्यापूर्ण मानते हैं किन्तु यह ठीक नहीं है। इतिहासज्ञ का यह कर्त्तव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सत्य और असत्य, वास्तविक और मिथ्या तथा यथार्थ को कल्पित वृत्तान्त से अलग करे। यह सत्य नहीं कि मेगास्थनीज़ ने अपने वृत्तान्त को कल्पित गाथाओं से भर दिया। ब्राह्मणों को अपने देवताओं के विषय में तरह-तरह की कथायें कहते सुनकर, उसने इन गाथाओं को यूनानी दृष्टिकोण से देखा और उनका सम्बन्ध यूनानी कथाओं से दिखाया। इससे उनका अभिप्राय भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर यूनानी छाप दिखाना था।

इस सम्बन्ध में यहाँ यह कहना उपयुक्त होगा कि देवी-देवताओं में उस समय शिव और कृष्ण का ही प्रधानता थी

1—स्ट्राबो १५, १, ६९।

जैसा कि यूनानी इतिहासकारों के वृत्तान्त से पता चलता है। इसकी सत्यता इस बात से प्रतीत होती है कि उत्तर-कालीन वैदिक काल से माया, कर्म, आत्मा के आवागमन तथा मुक्ति के साथ ही साथ रुद्र और विष्णु की प्रधानता दिखाने का प्रभाव बढ़ने लगा। प्रजापति का प्रभाव कम होकर रुद्र की प्रधानता स्वीकार होने लगी और उसके साथ ही साथ विष्णु की भी पूजा होने लगी। शैव तथा वैष्णवमत के उसी समय से उत्पत्ति और उत्थान हुए[1]। यूनानी इतिहासकारों में मेगास्थनीज़ ने कुछ जातियों का उल्लेख किया है जो शिव अथवा विष्णु को पूजते थे। शिवि शिव को मानते थे और शूरसेनी विष्णु के अनुयायी थे[2]।

यूनानी इतिहासकारों ने ब्राह्मण, बौद्ध और जैनमतों की भिन्नता पर प्रकाश नहीं डाला है पर उन्होंने कुछ संन्यासियों के तप का वर्णन किया है। इस प्रकार की तपस्या का हेरोडोटस[3] ने सबसे पहले उल्लेख किया है। उसने एक प्रकार के मनुष्यों के विषय में लिखा है कि वे न तो जीवहत्या करते थे और न कुछ बोते थे। उनका जीवन-निर्वाह जड़ तथा एक प्रकार के धान पर होता था जो अपनेआप भूमि में उग आता था। इसको वे उबालकर खा लेते थे। यह प्रयोग जैनमत से अधिक सम्बन्ध रखता है। बुद्धजी ने अपने अनुयायियों को मध्य भाग अनुकरण करने का उपदेश दिया था किन्तु महावीर तीर्थंकर की शिक्षा थी कि कठिन से कठिन तप किया जाय क्योंकि आत्मयातना से ही मुक्ति मिल सकती है[4]। यहाँ उन्होंने मनुष्यों के कल्याण से अधिक

१—मुकर्जी—हिन्दू-सस्कृति, पृष्ठ ११९। २—मेगास्थनीज़ अंश ४६। ३—३. १००। ४—कैम्ब्रिज—भारतवर्ष का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ १६२।

जीवहिंसा के विरुद्ध उपदेश दिया है। यदि यह हेराडोटस का वृत्तान्त जैनमत से सम्बन्ध रखता है तो यह सिद्ध होता है कि जैनमत बौद्धमत से प्राचीन है और ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में उत्तरी-पश्चिमी भारत तक फैल चुका था। यह ठीक है, क्योंकि महावीर के पहले भी २३ तीर्थङ्कर हो चुके थे।

दर्शन—धर्म और दर्शन का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन के बिना धर्म का कोई तत्त्व नहीं, और धार्मिक विचारों के बिना दर्शनशास्त्र का कोई मूल्य नहीं। हर एक दार्शनिक विचार में धर्म की मात्रा ही प्रधान रहती है, और इसी से जनता उस पर ध्यान देती है। यूनानी इतिहासकारों ने धर्म और दर्शन को एक ही में मिला दिया। उनके दार्शनिक वृत्तान्तों से ही हमको धार्मिक अवस्था का पता चलता है।

तपस्या—यूनानी इतिहासकारों ने दर्शन को तप तक ही सीमित रक्खा। मेगास्थनीज़ ने दो प्रकार के तपस्वियों का वर्णन किया है[1]—ब्राकमेनस और गर्मनस, जो ब्राह्मण और श्रमण थे। इन दोनों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने का आदेश सम्राट् अशोक ने भी दिया था[2]। मेगास्थनीज़ ने लिखा है कि दार्शनिक, नगर से बाहर वृक्ष के नीचे रहते थे जिसके चारों ओर घेरा होता था। छाल तथा पयाल का उनका बिछौना रहता था और वे अत्यन्त साधारण जीवन व्यतीत करते थे। वे मांस-भोजन तथा काम से अलग रहते थे, और अपना समय धार्मिक विचारों में व्यतीत करते थे। उन्हें इस बात का विशेष ध्यान रहता था कि वे अपने दार्शनिक ज्ञान को अपनी स्त्रियों से न प्रकट करें, क्योंकि भय यह था कि कहीं वे उन्हें त्याग न दें।

१—अंश ४१। २—चट्टानलेख ३ और १२।

श्रमणों में हाइलोबाई नामक-वन निवासी तपस्वी अत्यन्त आदरणीय थे[1]। वे जंगली फलों तथा पत्तों पर निर्वाह करते थे और वृक्षों की छाल के कपड़े पहनते थे। मदिरा तथा काम से उन्हें निषेध था। वे घोर तप करते थे और शरीर को अत्यन्त कष्ट देते थे। इस घोर तप और आत्मक्लेश का अरिस्टोबोलस[2] ने भी वर्णन किया है। उसने दो तपस्वियों के विषय में लिखा है कि एक तो तीव्र ऋतु में अपने शरीर को बाहर पड़े रहने देता था और दूसरा दोनों हाथों में एक लट्ठा लेकर एक पैर पर खड़ा रहता था और जब वह थक जाता था तब दूसरे पैर पर खड़ा हो जाता था। ओनेसिक्राइटस[3] ने भी लिखा है कि नगर से कोई १५ स्टेडिया की दूरी पर १५ साधुओं को उसने भिन्न-भिन्न दशाओं में देखा और वे उसी तरह दिन भर रहे।

ऊपर का वृत्तान्त कदाचित् ब्राह्मण तथा बौद्धमत के तपस्वियों से सम्बन्ध रखता है। यद्यपि इन इतिहासकारों ने किसी एक सम्प्रदाय के तपस्वियों का उल्लेख नहीं किया है, तथापि हम यह अनुमान कर सकते हैं कि दो प्रकार के तपस्वी थे जिनमें से एक अपनी कुटी में रहते थे। प्रसिद्ध ऋषियों के साथ बहुत से तपस्वी कदाचित् होते थे जो केवल फल तथा जड़ों पर निर्वाह करते थे। उनका समय ध्यान, यज्ञ, तप और अध्ययन में व्यतीत होता था। मेगास्थनीज़ ने कदाचित् एक जगह इनका उल्लेख किया है[4]। उसने एक दूसरे प्रकार के तपस्वियों के विषय में लिखा है जो किसी एक स्थान पर नहीं ठहरते थे। एक

१—स्ट्राबो १५. १. ६०। २—स्ट्राबो १५. १. ६१। ३—स्ट्राबो १५. १. ६२। ४—अंश ४१।

दूसरे के साथ संसर्ग में आने पर उनमें वाद-विवाद भी होता था।

भारतीय साहित्य से इन तपस्वी सम्प्रदायों का पता चलता है। ब्रह्मजालसूत्र में ६२ तरह के तपों का उल्लेख है जिन्हें ब्राह्मण और श्रमण मानते थे। जैनग्रन्थों (सूत्र-कृतांग) में इनकी गणना ३६३ की गई है[1]। वास्तव में तप ऋग्वेद[2] के समय से चला आता है, जब ऋषि-मुनि तप के प्रभाव से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेते थे। स्मृतियों में भी जीवन के दो अन्तिम आश्रम प्रत्येक द्विज के लिए तप द्वारा व्यतीत करने कहे गये हैं। वानप्रस्थ का समय कुटी में और परिव्राजक-काल घूमकर बिताना आदेशित है।[3]

कर्म—भारतीय दार्शनिक विचार कर्म के सिद्धान्त पर निर्धारित थे। इस जीवन के कर्मों का फल अगले जीवन में भोगना पड़ेगा। मेगास्थनीज़ ने लिखा है[4] कि उस समय अधिकतर वाद-विवाद मृत्यु के विषय पर होते थे। उनका विचार था कि इस जीवन में बच्चा माँ के गर्भ में रहता है और उसका वास्तविक जीवन मृत्यु के उपरान्त आरम्भ होता है। इस कारण वे इस जीवन में अत्यन्त कठिन तप करके क्रम से रहते थे, जिससे अगला जीवन सुखी हो। वे अच्छे और बुरे का भेद नहीं समझते थे, क्योंकि उनके लिए संसार स्वप्नवत् था। इस वृत्तान्त से यह पता चलता है कि वे कर्म के सिद्धान्त के अनुयायी थे। साथ ही साथ आत्मा के आवागमन और माया में भी उनका विश्वास था। यद्यपि वर्तमान जीवन पूर्व जन्म का फल है, तथापि इस जीवन में ऐसा कर्म होना चाहिए जिससे अगला जीवन सुखी हो।

१—मुकर्जी—हिन्दू संस्कृति, पृष्ठ २२०। २—६. १०६. ४। ३—मनु ६. २७। ४—अंश ४१।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र बदलकर नये कपड़े पहनता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नये शरीर में प्रवेश करती है। मनुष्य का भविष्य जीवन इस जन्म के कर्मों पर निर्धारित है, इसलिए कर्म ऐसे होने चाहिए जिससे आत्मा परमात्मा में लीन हो जाय। यूनानी इतिहासकारों ने इस भारतीय दार्शनिक विचार में 'आवागमन' के सिद्धान्त को अच्छी तरह से समझा। मृत्यु केवल एक ध्येय का साधन है, न कि स्वयं ध्येय है। इस आवागमन से मुक्ति ही ध्येय है। सुख-दुःख को समान समझना चाहिए। जीवन के इस सिद्धान्त का अध्ययन केवल पुरुष ही नहीं करते थे, वरन् स्त्रियाँ भी करती थीं, किन्तु उस समय से वे गार्हस्थ्य जीवन से अलग रहती थीं।

पञ्चतत्त्व—यूनानी इतिहासकारों के मतानुसार संसार की उत्पत्ति और नाश स्वाभाविक है। यह गोलाकार है और उसका रक्षक देवता अपनी शक्तियों से उसे परिपूर्ण करता है। इसकी उत्पत्ति में जल का मुख्य हाथ है, और चार तत्त्वों के अतिरिक्त पाँचवाँ तत्त्व प्रकृति है। इसी से आकाश और नक्षत्रों की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी भूमण्डल के बीच में है। स्ट्राबो[1] का यह वृत्तान्त सत्य प्रतीत होता है। पृथ्वी पाँच तत्त्वों की बनी हुई है। जल की प्रधानता इसलिए है कि पृथ्वी के चारों ओर जल ही जल है।

तीर्थयात्रा—यात्रा बहुत प्राचीन है और इससे मातृ-भूमि की भूगोल का पता चलता है। यात्री केवल दर्शन के हितार्थ ही नहीं जाते थे, वरन् वहाँ अन्य स्थानों से आये हुए यात्रियों से उनका संसर्ग होता था। देश-प्रेम

१—स्ट्राबो १५. १. ५९।

का यह अच्छा प्रमाण था। यूनानी इतिहासकारों में सबसे पहले टेसियस[1] ने यात्रा का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि प्रतिवर्ष पुरुष एक वार तीर्थयात्रा के लिए जाते थे जहाँ पहुँचने के लिए उन्हें पन्द्रह दिवस लगते थे। वहाँ सूर्य ठंडा हो जाता था। उसने इस स्थान का पता नहीं दिया है, परन्तु कदाचित् यह कोई ठंडा देश होगा।

यद्यपि यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित धर्म और दर्शन का वृत्तान्त वृहत् नहीं है तथापि इससे उस समय के उच्च विचारों का पता चलता है। इनमें केवल अलिकसुन्दर के इतिहासकार और मेगास्थनीज़ ने इस विषय पर वृत्तान्त लिखा है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि यहाँ के धर्म और दर्शन ने उनको आकर्षित नहीं किया। यदि पूरा विवरण मिलता तो अवश्य पता चलता कि भारतीय धर्म और दार्शनिक विचारों की श्रेष्ठता वे स्वीकार कर चुके थे।

शिक्षाविधि—उस समय की शिक्षाविधि के विषय में कुछ वृत्तान्त नहीं मिलता है। मेगास्थनीज़[2] ने केवल इतना लिखा है कि विद्या ब्राह्मणों तक सीमित थी। इस कारण उनका अत्यन्त आदर था। बालक के गर्भ में आते ही विद्वान् पुरुष गान आरम्भ करते थे और उपदेश देते थे कि जिससे बालक और माँ का कल्याण हो। बालक बढ़ते ही एक गुरु से दूसरे गुरु के यहाँ जाता था। ३७ वर्ष तक वह पूरा ब्रह्मचारी तथा सांसारिक सुखों से वंचित रहता था। विद्यार्थी-जीवन के पश्चात् वह गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करता था। मेगास्थनीज़ द्वारा वर्णित इस विद्यार्थी-जीवन का समर्थन छान्दोग्य उपनिषद्[3] से भी होता है। इसमें

१—अंश ८। २—अंश ४१ । ३—८, ७, १ ।

३२ वर्ष के अतिरिक्त जीवन पर्यन्त विद्यार्थी-जीवन का उल्लेख मिलता है। मनु[1] के अनुसार अध्ययन का काल विषय पर निर्भर था और ३८, १८ अथवा ९ वर्ष तक रहता था।

विद्यार्थी किसी विषय में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकता था। विषय उसकी रुचि के अनुसार होता था। भिन्न-भिन्न अध्यापक भिन्न-भिन्न विषयों को पढ़ाते थे। इसका उल्लेख ओनेसिक्राइटस[2] ने किया है। उसका कहना है कि मुशिकिनी (उत्तरी सिन्ध) में केवल विज्ञान का अध्ययन होता था। कभी-कभी तो इस विषय में सर्प के काटने पर जड़ी-बूटी बताने पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

लेखन—विद्याध्ययन लिखावट द्वारा नहीं होता था, वरन् विद्यार्थी पाठ कण्ठस्थ करते थे। लिखावट बहुत दिनों के बाद प्रचलित हुई। यद्यपि मोहनजोदारो में कुछ लेख मिले, जिनकी समानता सुमेर और मिश्र की पुरानी लिखावट से किसी प्रकार की जा सकती है, तथापि यूनानी इतिहासकारों में सबसे पहले निअरकस[3] ने कहा है कि भारतवासी कपड़े पर लिखते थे। मेगास्थनीज[4] का कथन है कि सब कार्य मुखाग्र होता था, सत्य नहीं प्रतीत होता। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के पिप्रावा के लेख से यह बात प्रत्यक्ष है।

स्ट्राबो[5] ने एक पत्र का उल्लेख किया है जो पोरस ने कैसर को यूनानी भाषा में चर्म पर लिखा था। यह पोरस कदाचित् पोरस महान् का वंशज रहा होगा और उसने ई० पू० पहली शताब्दी में कैसर को अपने देश आने का निमंत्रण

१—३. १२। २—स्ट्राबो १५. १. ३४। ३—स्ट्राबो १५. १. ६७। ४—भंश २५। ५—स्ट्राबो १५. १. १३।

दिया था। उस समय यूनानी भाषा का चलन भारतवर्ष में था।

प्लिनी[1] का कहना है कि पैपिरस वृक्ष से कागज़ बनता था। उसने लिखा है कि ताम्रपत्र पर लेख लिखे जाते थे। इन वृत्तान्तों से पता चलता है कि यद्यपि लेखन की उत्पत्ति बहुत दिन बाद हुई, तथापि उसका उत्थान अत्यन्त शीघ्र हुआ। निअरकस के समय में कपड़े पर लिखा जाता था। किन्तु प्लिनी के काल में कागज़ का प्रयोग होने लगा था। इन चार शताब्दियों में लेखन-कला कपड़े से ताँबा, ताँबे से ताड़, ताड़ से वल्कल और वल्कल से कागज़ में परिणत हुई। इससे यह प्रमाणित होता है कि लेखन-कला अलिक-सुन्दर के इतिहासकारों से पहले पूर्णतया भारत में प्रचलित हुई। यद्यपि विद्या और पाण्डित्य में भारतवर्ष बहुत आगे पहले ही बढ़ चुका था तथापि लेखन-कला बाद में प्रचलित हुई।

1—13, 21।

गहराई में जली हुई हड्डियाँ, राख तथा सबसे मुख्य एक सोने की पत्ती, जिस पर खड़ी हुई स्त्री की मूर्ति अंकित है, मिली। एक टीले में लकड़ी के खम्भे का एक ठूँठ भी मिला।

इस वृत्तान्त और खोज में निकली वस्तुओं की व्याख्या करते हुए हमें सूत्रों में वर्णित मृतक-संस्कारों का उल्लेख करना होगा। मृत्यु के पश्चात् चार संस्कार होते थे—(१) दाह-क्रिया, (२) अस्थि-सञ्चय, (३) शान्ति-कर्म, (४) श्मशान-चिता। अन्तिम संस्कार वैकल्पिक था और आधुनिक काल में यह नहीं किया जाता है। हड्डियों के ऊपर कोई समाधि अथवा स्मारक का निर्माण नहीं होता है, वरन् वे गंगाजी में बहा दी जाती हैं। चिता के पश्चात् पहले पेड़ के नीचे घड़े में सञ्चय कर वे टाँग दी जाती थीं, और फिर कुछ दिनों बाद घड़ा तोड़कर फेंक दिया जाता था और हड्डियाँ पृथ्वी पर रखकर उन पर समाधि बना दी जाती थी। इस प्रकार यह मृतक-समाधि वैदिक काल के समय की है और बाद में बौद्ध टीले अथवा स्तूपों के रूप में परिणत हो गई, जिनका निर्माण किसी बौद्धभिक्षु की हड्डियाँ रखने के लिए अथवा किसी पवित्र स्थान के दिखाने के लिए किया जाता था[1]।

इन यूनानी इतिहासकारों ने बौद्ध स्तूपों का वर्णन नहीं किया है, क्योंकि वे टीलों से बहुत मिलते-जुलते थे और बहुत प्राचीन काल से बनाये जाते थे। महापरिनिर्वाण सूत्र[2] में लिखा है कि महात्मा बुद्ध का राख और हड्डियों को दस भागों में बाँटा गया और विविध नरेशों ने एक-एक स्तूप बनवाया। अशोक के निगालीसागर लेख से पता चलता

१—मार्शल—तक्षशिला, पृष्ठ २४। २—२, १५८।

पाटलिपुत्र

है कि उसके पहले से स्तूप बनवाये जाते थे।
यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित इन दोनों।
सत्य है।

पाटलिपुत्र—मेगास्थनीज़लिखित पाटलिपुत्र का वर्णन बृहत् और ठीक है। इसकी सत्यता का पता सन् १९१२ में स्पूनर द्वारा की हुई खुदाई से लगता है। मेगास्थनीज़[1] ने लिखा है कि "इस नदी (गंगा) के एरानोबोस (सोन) संगम पर पाटलिपुत्र नामक नगर ८० स्टेडिया लम्बाई तथा १५ स्टेडिया चौड़ाई में सीमित है। इसका आकार चतुर्भुज है और इसके चारों ओर लकड़ी की दीवाल है, जिनके छिद्रों से तीर चलाये जाते हैं। रक्षा के लिए इसके चारों ओर एक खाई भी है जिसमें नगर का नाला भी आकर मिलता है।" आरियन[2] ने भी इसी प्रकार नगर का वर्णन किया है। उसका कहना है कि 'पलिमबोथरा नामक भारत में सबसे लम्बा नगर प्रासियों के देश में एरानोबोस और सबसे बड़ी नदी गंगा के संगम पर स्थित है।" इस नगर की लम्बाई-चौड़ाई उतनी ही थी, जितनी मेगास्थनीज़ ने लिखी है।

प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि पाटलिपुत्र की नींव चन्द्रगुप्त मौर्य से पहले अजातशत्रु नामक सम्राट् ने डाली थी। महाभग्गसुत्त के अनुसार सुनीधि और वसकार नामक मगध के दो मंत्रियों ने पाटलिग्राम नामक एक गढ़ का वज्रियों से रक्षा के लिए निर्माण किया था।[3] परिशिष्ट पर्वन[4] में लिखा है कि अजातशत्रु के पुत्र उदयन ने अपनी नई राजधानी की स्थापना गंगा के किनारे की और उस

१—स्ट्राबो १५. १. ३६। २—अंग १०। ३—राय चौधरी भारत का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ २। ४—याकोबी पृष्ठ ४२।

नगर का नाम पाटलिपुत्र पड़ा। इस प्रकार पाटलिपुत्र का निर्माण शत्रुओं से रक्षा के लिए हुआ था।

इस लकड़ी के नगर में राजनिवास प्रधान था। मेगास्थनीज़ द्वारा वर्णित इसका वृत्तान्त आलियन की पुस्तक में सुरक्षित है[1]। "इस प्रासाद में, जहाँ देश के सबसे बड़े सम्राट् निवास करते हैं और जिसकी सुन्दरता के आगे सूसा और यकबताना के राजमहल नहीं ठहर सकते, अन्य स्थानों के अतिरिक्त, जो अपनी सुन्दरता से मन मोह लेते हैं, कुछ स्थान आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं। उद्यानों में पालतू मोर घूमते हैं। जगह-जगह पर छायादार कुञ्ज हैं और विश्राम के स्थानों पर वृक्ष लगे हुए हैं।" इस प्रकार मेगास्थनीज द्वारा वर्णित मौर्य-प्रासाद, जिसमें सोने के मुलम्मे किये हुए खम्भे लगे थे और जिन पर सुनहरी अंगूरी बेल लगी थी तथा चाँदी की चिड़ियों से सुशोभित थे, सुन्दर वृहत् उद्यान, जहाँ भाँति-भाँति के सुन्दर वृक्ष, कुञ्ज तथा मछलियों के तालाब थे, अपनी सुन्दरता से सूसा और यकबताना के प्रासादों को भी तुच्छ बनाते थे। यहाँ यह कहना ठीक होगा कि मौर्य-कालीन शिल्प-कला केवल लकड़ी तक सीमित न थी, वरन् पत्थर का भी प्रयोग होता था। अशोक के समय के पत्थर के खम्भे अपनी सुन्दर तथा चिकनी पालिश से इस बात का प्रमाण देते हैं।

मेगास्थनीज़ द्वारा वर्णित पाटलिपुत्र के वृत्तान्त की सत्यता का प्रमाण डाक्टर स्पूनर द्वारा की हुई खुदाई से पता चलता है। ६०० फीट लम्बी खाई खोदने के पश्चात् दो स्थानों पर मौर्य समतल मिली जहाँ गढ़े खोदे गये। उनमें

1—१३, १८।

एक स्थान पर लकड़ी पाई गई[१]। एक जगह उसने लिखा है[२] कि खुदाई आरम्भ करते ही गुप्तकालीन दीवालों के नीचे राख का एक बड़ा ढेर मिला। उससे यह पता चलता है कि किसी समय में यहाँ आग लगी होगी जिसका यूनानी इतिहासकारों के वर्णन में कहीं पता नहीं लगता है। महापरिनिर्वाण[३] सूत्र में महात्मा बुद्ध द्वारा पाटलिपुत्र के पतन पर भविष्यवाणी की गई है। उसके अनुसार पाटलिपुत्र पर तीन आपत्तियाँ आवेंगी, जिनका सम्बन्ध अग्नि, जल और गृहकलह से होगा। नगर के दो नदियों के संगम पर स्थित होने के कारण बाढ़ से सदैव भय रहता था और लकड़ी के प्रासाद के लिए एक चिनगारी ही पर्याप्त थी। गृह-कलह तो एक साधारण बात था।

पाटलिपुत्र के आकार के विषय में स्पूनर का कहना है[४] कि लकड़ी के खम्भे के आकार से यह प्रतीत होता है कि ऊपर के निर्माण की लकड़ी बहुत ही ठोस और भारी रही होगी तथा अग्निकाण्ड ने प्रचण्ड रूप धारण किया होगा। राखों के गढ़े लकड़ी की समतल से कहीं चार फीट से अधिक ऊँचे थे जिससे पता चलता है कि उन स्थान पर खम्भे खड़े किये गये थे जो जलकर राख हो गये[५]। इस प्रकार मेगास्थनीज़ की सत्यता खुदाई कराने से प्रमाणित हुई। उसके वृत्तान्त को शंका की दृष्टि से देखना भी ठीक नहीं, क्योंकि वह मौर्य सम्राट् के यहाँ बहुत काल तक रहा और वहाँ के प्रासाद को उसने स्वयं देखा।

तक्षशिला—फिलास्ट्रेटस ने तक्षशिला के अग्नि-मन्दिर का वृत्तान्त अपनी पुस्तक 'आप्पलोनियस की दार्शनिक

१—आर्कियोलाजिकल रिपोर्ट १६१२–१३, पृष्ठ ५५। २—वही पृष्ठ ५१। ३—२, १२८। ४—देखिए १, पृष्ठ ६३। ५—वही पृष्ठ ६६।

काल्पनिक कथा' में किया है[1]। उसका कहना है कि यूनानी नगर की भाँति सुरक्षित, सम्राट् की राजधानी तक्षशिला नीनेख के इतने आकार का था। दीवालों के बाहर संगमरमर का एक सुन्दर मन्दिर था जिसमें एक समाधिस्थान था और बहुत से खम्भे लगे थे। जहाँ समाधि थी वहाँ ताम्रपत्र पर अंकित कई चित्र लटके थे जिनमें अलिक सुन्दर (सिकन्दर) और पोरस की वीरता दिखाई गई थी। चित्र इतने सुन्दर अंकित थे कि उनकी समानता यूनानी चित्रकारों के चित्रों से की जा सकती है। उसी मन्दिर में आप्पलोनियस स्वयं ठहरा था, जब वह फ्राटिस से मिलने गया था। हो सकता है कि फ़िलास्ट्रेटस द्वारा वर्णित मन्दिर खुदाई में निकला हुआ, आपम्मिडल मन्दिर ही हो। फ़िलास्ट्रेटस का कहना है[2] कि मन्दिर की लम्बाई कोई १०० फ़ीट थी और वह लोहे की भाँति पत्थर का बना हुआ था। भीतरी भाग का वर्णन उसी मन्दिर से मिलता है। प्रासाद का वर्णन करते हुए फ़िलास्ट्रेटस ने लिखा है कि यह बहुत बड़ा और सुन्दर बना हुआ था। कला का यह एक सुन्दर उदाहरण था। उसका कथन है[3] कि "यदि बाहर से देखा जाय तो केवल एक ही मकान मालूम पड़ता है, किन्तु अन्दर बहुत से बने हैं। इसका पता अन्दर जाकर ही लगता है जहाँ भूमि की समतल के नीचे भी बहुत से कमरे बने हैं।" खुदाई से फ़िलास्ट्रेटस की सत्यता का बहुत कुछ पता चला है। यह प्रतीत होता है कि उस यूनानी इतिहासकार ने केवल सिरकप का ही वर्णन किया है जो यूनानियों के समय में उस प्रान्त की राजधानी थी। भीड़ का टीला अत्यन्त प्राचीन था और सिरसुख कुषाणकाल में प्रधानता को पा सका।

१—२. २५। २—२. २२। ३—१. २०।
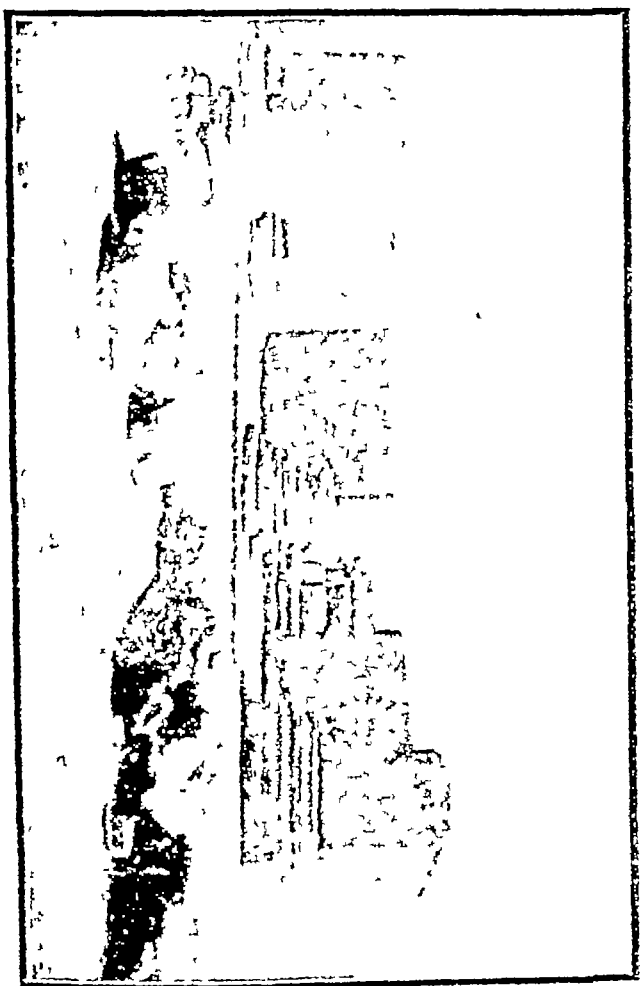
तपशिला का मन्दिर

इस कारण सिरकप तक ही उसका वृत्तान्त सीमित है। इस नगर की दीवालें खुदाई में मिलीं।

फिलास्ट्रेटस के वृत्तान्त से उस समय की चित्रकला का भी पता चलता है। चित्र इतनी सुन्दरता से अंकित थे कि यूनानी कला के चित्रों से उनकी समता की जा सकती थी। इससे उस समय की कला का पता चलता है। निअरकस' का कथन है कि भारतीय किसी भी चित्र को देखकर उसका अनुकरण कर सकते थे। इससे यह प्रतीत होता है कि कला में भारतीयों ने कितनी उन्नति की थी।

इनके अतिरिक्त किसी और यूनानी इतिहासकार ने भारतीय कला और शिल्प-विद्या का उल्लेख नहीं किया है। मेगास्थनीज़ और फ़िलास्ट्रेटस ने क्रमशः पाटलिपुत्र और तक्षशिला के प्रासादों का उल्लेख किया है। उनके वृत्तान्त की सत्यता खुदाई करने पर प्रतीत हुई। इन दो केन्द्रों के अतिरिक्त किसी और केन्द्र का उल्लेख किसी इतिहासकार ने नहीं किया है।

आठवाँ अध्याय

सारांश

प्राचीन और वृहत् भारत

यूनानी इतिहासकारों का भारतीय वर्णन यद्यपि वृहत् नहीं है, तथापि उससे प्राचीन तत्कालीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर प्रकाश डाला जा सकता है। भारत के विषय में यूनानियों का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ा। प्रत्येक इतिहासकार ने कुछ बढ़ाकर वर्णन किया है। इनके द्वारा वर्णित वृत्तान्त संस्कृति और सभ्यता के प्रत्येक विषय पर प्रकाश डालते हैं। हेरोडोटस तथा टेसियस का वृत्तान्त अनार्यों तक सीमित था, क्योंकि उन्हें भारत में आने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। उनके पश्चात् के इतिहासकारों का वर्णन उन्हीं भारतीयों के सम्बन्ध में रहता है जिनकी सभ्यता उच्चकोटि की थी।

भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत संसार के अन्य देशों से पृथक् है। इसके तीन ओर समुद्र और उत्तर में हिमालय पर्वत संसार से इसे अलग किये हुए है किन्तु ऐतिहासिक प्रभावों के आगे इसे झुकना पड़ा। इसकी भौगोलिक पृथकता इसे विदेशियों के प्रभाव से न रोक सकी। इसी कारण राजनैतिक क्षेत्र में बहुत से उथल-पुथल हुए।

यूनानी इतिहासकारों ने भारतीय राजनैतिक विचारों को भी सराहा है। इन्होंने भारतीय राजकीय तथा प्रजातन्त्र राष्ट्रों का उल्लेख किया है। इन्हीं भारतीयों ने सम्राट् के अधिकारों को कम कर दिया था और सम्राट् प्रजा के ऊपर निर्भर था। भारतवर्ष में प्रजातन्त्र-सम्राट् भी थे और किसी विदेशी आक्रमणों के समय बहुत से राष्ट्र एक हो जाते थे। इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भारत श्रेष्ठ था।

इस क्षेत्र में भारतीय केवल उसी दशा में बढ़ सकते थे जब कि सामाजिक क्षेत्र में वे बहुत बढ़े-चढ़े हों। इसका पता मेगास्थनीज के वृत्तान्त से लगता है। समाज सात भागों में विभाजित था। इसी विभाजन के कारण आर्थिक जीवन में भारतीय विभाजित रूप से कार्य करते थे। कृषि के साथ ही साथ व्यापार तथा कला में भी भारतीय दक्ष थे। उनका ध्येय केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति ही न था वरन् उन्होंने अर्थशास्त्र की विधियाँ, उपज, विभाग, वस्तु-विनिमय तथा पूर्ति का पूरा उपयोग करना सीखा था। इसी कारण आर्थिक जीवन भी उन्नतिमय था।

धर्म तथा दर्शन में भारतीय बहुत विद्वान थे। इतिहास-कारों का इस ओर विशेष आकर्षण हुआ और उनके वृत्तान्तों से भारतीयों की इस क्षेत्र में श्रेष्ठता प्रतीत होती है। इसके साथ ही साथ भारतवासी कला में भी पीछे न थे। मेगास्थनीज़ का कहना है कि पाटलिपुत्र के मौर्य-प्रासाद के सामने सूसा और एकबताना के राजनिवास भी तुच्छ लगते थे। पाटलिपुत्र और तक्षशिला के वर्णन से उसी समय की कला का पूर्ण तया पता चलता है।

इस प्रकार यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित भारतीय वृत्तान्त से पता चलता है कि भारत प्राचीन और वृहत् था। इसकी प्राचीनता के विषय में वैरेल नामक एक भूगर्भ-शास्त्रज्ञ (Geologist) का कहना है कि मनुष्य और हिमालय एक साथ लाखों वर्ष पहले निकले, किन्तु भारत अपनी संस्कृति और सभ्यता के कारण वृहत् और महान् था जिसकी तुलना प्राचीन पाश्चात्य देश नहीं कर सकते थे।